।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय १ ।।

वंद्ना, गेहूँ पीसने वाला एक अद्‌भुत सन्त - गेहूँ पीसने की कथा तथा उसका तात्पर्य। वन्दना (भावार्थ)

पुरातन पद्धति के अनुसार श्री हेमाडपंत श्री साई सच्चरित्र का आरम्भ वन्दना द्वारा करते हैं।

(१) प्रथम श्री गणेश को साष्टांग नमन करते हैं, जो कार्य को निर्विघ्न समाप्त कर उस को यशस्वी बनाते हैं और कहते हैं कि श्री साई ही गणपति हैं।

(२) फिर भगवती सरस्वती को, जिन्होंने काव्य रचना की प्रेरणा दी और कहते हैं कि श्री साई भगवती से भिन्न नहीं हैं, जो कि स्वयं ही अपना जीवन संगीत बयान कर रहे हैं।

(३) फिर ब्रह्मा, विष्णु और महेश को, जो क्रमशः उत्पत्ति, स्थिति और संहारकर्त्ता हैं और कहते हैं कि श्री साई और वे अभिन्न हैं। वे स्वयं ही गुरु बनकर भवसागर से पार उतार देंगे।

(४) फिर अपने कुलदेवता श्रीनारायण आदिनाथ की वन्दना करते हैं, जो कि कोकण में प्रगट हुए। कोकण वह भूमि है। जिसे श्री परशुरामजी ने समुद्र से निकालकर स्थापित किया था। तत्पश्चात् वे अपने कुल के आदिपुरुषों को नमन करते हैं।

(५) फिर श्री भारद्वाज मुनि को, जिनके गोत्र में उनका जन्म हुआ। पश्चात् उन ऋषियों को जैसे-याज्ञवल्क्य, भृगु, पाराशर, नारद, वेदव्यास, सनक-सनंदन, सनत्कुमार, शुक, शौनक, विश्वामित्र, वसिष्ठ, वाल्मीकि, वामदेव, जैमिनी, वैशंपायन,नव योगींद्र, इत्यादि तथा आधुनिक सन्त जैसे-निवृत्ति, ज्ञानदेव, सोपान, मुक्ताबाई, जनार्दन, एकनाथ, नामदेव, तुकाराम कान्हा, नरहरि आदि को नमन करते हैं।

(६) फिर अपने पितामह सदाशिव , पिता रघुनाथ और माता को, जो उनके बचपन में ही स्वर्ग गत हो गई थीं। फिर अपनी चाची को, जिन्होंने उनका भरण-पोषण किया और अपने प्रिय ज्येष्ठ भ्राता को नमन करते हैं।

(७) फिर पाठकों को नमन करते हैं, जिनसे उनकी प्रार्थना है कि वे एकाग्रचित्त होकर कथामृत का पान करें।

(८) अन्त में श्रीसच्चिदानंद सद्‌गुरु श्री साईनाथ महाराज को, जो कि श्री दत्तात्रेय के अवतार और उनके आश्रयदाता हैं और जो ''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'' का बोध कराकर समस्त प्राणियों में एक ही ब्रह्म की व्याप्ति की अनुभूति कराते हैं।

श्री पाराशर, व्यास और शांडिल्य आदि के समान भक्ति के प्रकारों का संक्षेप में वर्णन कर अब ग्रंथकार महोदय निम्नलिखित कथा प्रारम्भ करते हैं।

गेहूँ पीसने की कथा

''सन् १९१० में मैं एक दिन प्रातःकाल श्री साई बाबा के दर्शनार्थ मस्जिद में गया। वहाँ का विचित्र दृश्य देख मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि साई बाबा मुँह हाथ धोने के पश्चात् चक्की पीसने की तैयारी करने लगे। उन्होंने फर्श पर एक टाट का टुकड़ा बिछा, उस पर हाथ से पीसने वाली चक्की रखी। वे कुछ गेहूँ सूप में निकाल लाये और अपनी कफनी की बाँहें चढ़ा, मुट्ठी से चक्की में गेहूँ डालकर उन्हें पीसना आरम्भ कर दिया।

मैं सोचने लगा कि बाबा को चक्की पीसने से क्या लाभ है? उनके पास तो कोई है भी नहीं और वे अपना निर्वाह भी भिक्षावृत्ति द्वारा ही करत हैं। इस घटना के समय वहाँ उपस्थित अन्य व्यक्तियों की भी ऐसी ही धारणा थी। परंतु उनसे पूछने का साहस किसे था? बाबा के चक्की पीसने का समाचार शीघ्र ही सारे गाँव में फैल गया और उनकी यह विचित्र लीला देखने के हेतु तत्काल ही नर-नारियों की भीड़ मस्जिद की ओर दौड़ पड़ी।

उनमें से चार निडर स्त्रियाँ भीड़ को चीरती हुई ऊपर आईं और बाबा को बलपूर्वक वहाँ से हटाकर उनके हाथ से चक्की का खूँटा छीनकर तथा उनकी लीलाओं का गायन करते हुये उन्होंने गेहूँ पीसना प्रारम्भ कर दिया।

पहिले तो बाबा क्रोधित हुए, परन्तु फिर उनका भक्तिभाव देखकर वे शान्त होकर मुस्कराने लगे। पीसते-पीसते उन स्त्रियों के मन में ऐसा विचार आया कि बाबा के न तो घरद्वार है और न इनके कोई बाल-बच्चे हैं तथा न कोई देखरेख करने वाला ही है। वे स्वयं भिक्षावृत्ति द्वारा ही अपना निर्वाह करते हैं, अतः उन्हें भोजनादि के लिये आटे की आवश्यकता ही क्या है ? बाबा तो परम दयालु हैं। हो सकता है कि यह आटा वे हम सब लोगों में ही वितरण कर दें। इन्हीं विचारों में मग्न रहकर गीत गाते-गाते ही उन्होंने सारा आटा पीस डाला। तब उन्होंने चक्की को हटाकर आटे को चार समान भागों में विभक्त कर लिया और अपना-अपना भाग लेकर वहॉं से जाने को उद्यत हुईं। अभी तक शान्त मुद्रा में निमग्न बाबा तत्क्षण ही क्रोधित हो उठे और उन्हें अपशब्द कहने लगे-'' स्त्रियो ! क्या तुम पागल हो गई हो? तुम किसके बाप का माल हड़पकर ले जा रही हो? क्या कोई कर्जदार का माल है, जो इतनी आसानी से उठाकर लिये जा रही हो? अच्छा, अब एक कार्य करो कि इस आटे को ले जाकर गाँव की मेंड़(सीमा) पर बिखेर आओ।''

मैंने शिरडीवासियों से प्रश्न किया कि जो कुछ बाबाने अभी किया है, उसका यथार्थ में क्या तात्पर्य है? उन्होंने मुझे बतलाया कि गाँव में विषूचिका(हैजा) का जोरों से प्रकोप है और उसके निवारणार्थ ही बाबा का यह उपचार है। अभी जो कुछ आपने पीसते देखा था, वह गेहूँ नहीं , वरन् विषूचिका (हैजा) थी,जो पीसकर नष्ट-भ्रष्ट कर दी गई है। इस घटना के पश्चात् सचमुच विषूचिका की संक्रामकता शांत हो गई और ग्रामवासी सुखी हो गये।

यह जानकर मेरी प्रसन्नता का पारावार न रहा। मेरा कौतूहल जागृत हो गया। मैं स्वयं से प्रश्न करने लगा कि आटे और विषूचिका (हैजा) रोग का भौतिक तथा पारस्परिक क्या सम्बंध है? इसका सूत्र कैसे ज्ञात हो? घटना बुद्धिगम्य सी प्रतीत नहीं होती। अपने हृदय की सन्तुष्टि के हेतु इस मधुर लीला का मुझे चार शब्दों में महत्व अवश्य प्रकट करना चाहिऐ। लीला पर चिन्तन करते हुऐ मेरा हृदय प्रफुल्लित हो उठा और इस प्रकार बाबा का जीवन-चरित्र लिखने के लिऐ मुझे प्रेरणा मिली। यह तो सब लोगों को विदित ही है कि यह कार्य बाबा की कृपा और शुभ आशीर्वाद से सफलतापूर्वक सम्पन्न हो गया।''

आटा पीसने का तात्पर्य

शिरडीवासियों ने इस आटा पीसने की घटना का जो अर्थ लगाया, वह तो प्रायः ठीक ही है; परन्तु उसके अतिरिक्त मेरे विचार से कोई अन्य अर्थ भी है। बाबा शिरडी में ६० वर्षों तक रहे और इस दीर्घ काल में उन्होंने आटा पीसने का कार्य प्रायः प्रतिदिन ही किया। पीसने का अभिप्राय गेहूँ से नहीं, वरन् अपने भक्तों के पापों, दुर्भाग्यों,

मानसिक तथा शारीरिक तापों से था। उनकी चक्की के दो पाटों में ऊपर का पाट भक्ति तथा नीचे का कर्म था। चक्की का मुठिया जिससे कि वे पीसते थे, वह था ज्ञान। बाबा का दृढ़ विश्वास था कि जब तक मनुष्य के हृदय से प्रवृत्तियाँ, आसक्ति, घृणा तथा अहंकार नष्ट नहीं हो जाते, जिनका नष्ट होना अत्यन्त दुष्कर है; तब तक ज्ञान तथा आत्मानुभूति संभव नहीं है।

यह घटना कबीरदासजी की इसके तदनुरुप घटना की स्मृति दिलाती है। कबीरदास जी एक स्त्री को अनाज पीसते देखकर अपने गुरु निपटनिरंजन से कहने लगे कि मैं इसलिऐ रुदन कर रहा हूँ कि जिस प्रकार अनाज चक्की में पीसा जाता है, उसी प्रकार मैं भी भवसागर रुपी चक्की में पीसे जाने की यातना का अनुभव कर रहा हूँ। [१] उनके गुरु ने उत्तर दिया कि घबड़ाओ नहीं, चक्की के केन्द्र में जो ज्ञान रुपी दंड है, उसी को दृढ़ता से पकड़ लो, जिस प्रकार तुम मुझे करते देख रहे हो। उससे दूर मत जाओ; बस, केन्द्र की ओर ही अग्रसर होते जाओ और तब यह निश्चित है कि तुम इस भवसागर रुपी चक्की से अवश्य ही बच जाओगे।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।।

१. चलती चक्की देख के, दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में, साबूत बचान कोय।। - कबीर

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय २।।

ग्रन्थ लेखन का ध्येय, कार्यारम्भ में असमर्थता और साहस, गरमागरम बहस, अर्थपूर्ण उपाधि हेमाडपन्त, गुरु की आवश्यकता।

गत अध्याय में ग्रन्थकार ने अपने मौलिक ग्रन्थ श्री साई सच्चरित्र (मराठी भाषा) में उन कारणों पर प्रकाश डाला था, जिनके द्वारा उन्हें ग्रन्थरचना के कार्य को आरम्भ करने की प्रेरणा मिली। अब वे ग्रन्थ पठन के योग्य अधिकारियों तथा अन्य विषयों का इस अध्याय में विवेचन करते हैं।

ग्रंथ लेखन का हेतु

किस प्रकार विषूचिका(हैजा) के रोग के प्रकोप को आटा पिसवाकर तथा उसको ग्राम के बाहर फेंककर रोका तथा उसका उन्मूलन किया, बाबा की इस लीला का प्रथम अध्याय में वर्णन किया जा चुका है। मैंने और भी लीलाएँ सुनीं, जिनसे मेरे हृदय को अति आनंद हुआ और यही आनन्द का स्त्रोत काव्य(कविता) रुप में प्रकट हुआ। मैंने यह भी सोचा कि इन महान् आश्चर्यजनक लीलाओं का वर्णन बाबा के भक्तों के लिये मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद सिद्ध होगा तथा उनके पाप समूल नष्ट हो जाऐंगे। इसलिऐ मैंने बाबा की पवित्र जीवन गाथा और मधुर उपदेशों का लेखन प्रारम्भ कर दिया। श्री साई की जीवनी न तो उलझनपूर्ण है और न संकीर्ण ही है, वरन् सत्य और आध्यात्मिक मार्ग का वास्तविक दिग्दर्शन कराती है।

कार्य आरम्भ करने में असमर्थता और साहस

श्री. हेमाडपन्त को यह विचार आया कि मैं इस कार्य के लिऐ उपयुक्त पात्र नहीं हूँ। मैं तो अपने परम मित्र की जीवनी से भी भली भाँति परिचित नहीं हूँ और न ही अपनी प्रकृति से। तब फिर मुझ जैसा मूढ़मति भला एक महान् संतपुरुष की जीवनी लिखने का दुस्साहस कैसे कर सकता है? अवतारों की प्रवृति के वर्णन में वेद भी अपनी असमर्थता प्रगट करते हैं। किसी सन्त का चरित्र समझने के लिऐ स्वयं को पहले सन्त होना नितांत आवश्यक है। फिर मैं तो उनका गुणगान करने के सर्वथा अयोग्य ही हूँ। संत की जीवनी लिखने मे एक महान् साहस की आवश्यकता है और कहीं ऐसा न हो कि चार लोगों के समक्ष हास्य का पात्र बनना पड़े, इसलिऐ श्री साई बाबा की कृपा प्राप्त करने के लिऐ मैं ईश्वर से प्रार्थना करने लगा।

महाराष्ट्र के संतश्रेष्ठ श्री ज्ञानेश्वर महाराज का कथन है कि संतचरित्र के रचयिता से परमात्मा अति प्रसन्न होता है। तुलसीदासजी ने भी कहा है कि-''साधुचरित शुभ सरिस कपासू। निरस विषद गुणमय फल जासू।। जो सहि दुःख पर छिद्र दुरावा। वंदनीय जेहि जग जस पावा।।'' भक्तों को भी संतों की सेवा करने की इच्छा बनी रहती है। संतों की कार्य पूर्ण करा लेने की प्रणाली भी विचित्र ही है। यथार्थ प्रेरणा तो संत ही किया करते हैं, भक्त तो निमित्त मात्र, या कहिऐ कार्यपूर्त्ति के लिये एक यंत्र मात्र हैं। उदाहरणार्थ शक सं. १७०० में कवि महीपति को संत चरित्र लेखन की प्रेरणा हुई। सन्तों ने अंतःप्रेरणा पैदा की और कार्य पूर्ण हो गया। इसी प्रकार शक सं. १८०० में श्री दासगणू की सेवा स्वीकार हुई। महीपति ने चार काव्य रचे-भक्तविजय, संतविजय,भक्तलीलामृत और संतलीलामृत और दासगणू ने केवल दो भक्तलीलामृत और संतकथामृत-जिसमें आधुनिक संतों के चरित्रों का वर्णन है। भक्तलीलामृत के अध्याय ३१, ३२, और ३३ तथा संत कथामृत के ५७ वें अध्याय में श्रीसाई बाबा की मधुर जीवनी तथा अमूल्य उपदेशों का वर्णन सुन्दर एवं रोचक ढंग से किया गया है। इनका उद्धरण श्रीसाईलीला पत्रिका के अंक ११,१२,और १७ में दिया गया है। पाठकों से इनके पठन का अनुरोध है। इसी प्रकार श्रीसाईबाबा की अद्‌भुत लीलाओं का वर्णन एक बहुत सुन्दर छोटीसी पुस्तिका-श्रीसाईनाथ भजनमाला में किया गया है। इसकी रचना बान्द्रा की श्रीमती सावित्रीबाई रघुनाथ तेंडुलकर ने की है।

श्रीदासगणू महाराज ने भी श्रीसाईबाबा पर कई मधुर कविताओं की रचना की है। एक और भक्त अमीदास भवानी मेहता ने भी बाबा की कुछ कथाओं को गुजराथी में प्रकाशित किया है। 'साई प्रभा' नामक पत्रिका में भी कुछ लीलाएँ शिरडी के दक्षिणा भिक्षा संस्थान द्वारा प्रकाशित की गई हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि जब श्रीसाईनाथ महाराज के जीवन पर प्रकाश डालने वाला इतना साहित्य उपलब्ध है, फिर और एक ग्रन्थ 'साई सच्चरित्र' रचने की आवश्यकता ही कहाँ पैदा होती है? इसका उत्तर केवल यही है कि श्रीसाई बाबा की जीवनी सागर के सदृश अगाध, विस्तृत और यथार्थ है। यदि उसमें गहरा गोता लगाया जाए तो ज्ञान एवं भक्ति रुपी अमूल्य रत्नों की सहज ही प्राप्ति हो सकती है, जिनसे मुमुक्षुओं को बहुत लाभ होगा। श्रीसाई बाबा की जीवनी, उनके दृष्टान्त एवं उपदेश महान् आश्चर्य से परिपूर्ण हैं। दुःख और दुर्भाग्यग्रस्त मानवों को इनसे शान्ति और सुख प्राप्त होगा तथा लोक व परलोक में श्रेयस् की प्राप्ति होगी। **यदि श्री साई बाबा के उपदेशों का, जो कि वैदिक शिक्षा के समान ही मनोरंजक और शिक्षाप्रद हैं, ध्यानपूर्वक श्रवण एवं मनन किया जाऐ तो भक्तों को अपने मनोवांछित फल की प्राप्ति हो जाऐगी,** अर्थात् ब्रह्म से अभिन्नता, अष्टांग योग की सिध्द और समाधि आनन्द आदि की प्राप्ति सरलता से हो जाएगी । यह सोचकर ही मैंने चरित्र की कथाओं को संकलित करना प्रारम्भ कर दिया। साथ ही यह विचार भी आया कि मेरे लिऐ सबसे उत्तम साधना भी केवल यही है। जो भोले-भाले प्राणी श्री साई बाबा के दर्शनों से अपने नेत्र सफल करने के सौभाग्य से वंचित रहे हैं, उन्हें यह चरित्र अति आनन्ददायक प्रतीत होगा। अतःमैंने श्रीसाईबाबा के उपदेश और दृष्टान्तों की खोज प्रारम्भ कर दी, जो कि उनकी असीम सहज प्राप्त आत्मानुभूतियोंका निचोड़ था। मुझे बाबा ने प्रेरणा दी और मैंने भी अपना अहंकार उनके श्री-चरणों पर न्योछावर कर दिया। मैंने सोचा कि अब मेरा पथ अति सुगम हो गया है और बाबा मुझे इहलोक और परलोक में सुखी बना देंगे।

मैं स्वयं बाबा की आज्ञा प्राप्त करने का साहस नहीं कर सकता था। अतः मैंने श्री. माधवराव उपनाम शामा से, जो कि बाबा के अंतरंग भक्तों में से थे, इस हेतु प्रार्थना की। उन्होंने इस कार्य के निमित्त श्री साईबाबा से विनम्र शब्दों में इस प्रकार प्रार्थना की कि '' ये अण्णासाहेब आपकी जीवनी लिखने के लिऐ अति उत्सुक हैं। परन्तु आप कृपया ऐसा न कहना कि मैं तो एक फकीर हूँ तथा मेरी जीवनी लिखने की आवश्यकता ही क्या है? आपकी केवल कृपा और अनुमति से ही ये लिख सकेंगे, अथवा आपके श्री-चरणों का पुण्यप्रताप ही इस कार्य को सफल बना देगा। आपकी अनुमति तथा आशीर्वाद के अभाव में कोई भी कार्य यशस्वी नहीं हो सकता।'' यह प्रार्थना सुनकर बाबा को दया आ गई। उन्होंने आश्वासन और उदी देकर अपना वरद-हस्त मेरे मस्तक पर रखा और कहने लगे कि '' इन्हें जीवनी और दृष्टान्तों को एकत्रित कर लिपिबद्ध करने दो, मैं इनकी सहायता करुँगा। **मैं स्वयं ही अपनी जीवनी लिखकर भक्तों की इच्छा पूर्ण करुँगा।** परन्तु इनको अपना अहं त्यागकर मेरी शरण में आना चाहिऐ। जो अपने जीवन में इस प्रकार आचरण करता है, उसकी मैं अत्यधिक सहायता करता हूँ। मेरी जीवन-कथाओं की बात तो सहज है, मैं तो इन्हें घर बैठे अनेक प्रकार से सहायता पहुँचाता हूँ। जब इनका अहं पूर्णतः नष्ट हो जाऐगा और खोजनेपर लेशमात्र भी न मिलेगा, तब **मैं इनके अन्तःकरण में प्रकट होकर स्वयं ही अपनी जीवनी लिखूँगा। मेरे चरित्र और उपदेशों के श्रवण मात्र से ही भक्तों के हृदय में श्रद्धा जागृत होकर सरलतापूर्वक आत्मानुभूति एवं परमानंद की प्राप्ति हो जाऐगी।** ग्रन्थ में अपने मत का प्रतिपादन और दूसरों का खंडन तथा अन्य किसी विषय के पक्ष या विपक्ष में व्यर्थ के वादविवाद की कुचेष्टा नहीं होनी चाहिऐ।''

अर्थपूर्ण उपाधि 'हेमाडपंत'

'वादविवाद' शब्द से हमको स्मरण हो आया कि मैंने पाठकों को वचन दिया है कि 'हेमाडपंत' उपाधि किस प्रकार प्राप्त हुई, इसका वर्णन करुँगा। अब मैं उसका वर्णन करता हूँ।

श्री काकासाहेब दीक्षित व नानासाहेब चाँदोरकर मेरे अति घनिष्ठ मित्रों में से थे। उन्होंने मुझसे शिरडी जाकर श्रीसाई बाबा के दर्शनों का लाभ उठाने का अनुरोध किया। मैंने उन्हे वचन दिया, परन्तु कुछ बाधा आ जाने के कारण मेरी शिरडी-यात्रा स्थगित हो गई । मेरे एक घनिष्ठ मित्र का पुत्र लोनावला में रोगग्रस्त हो गया था। उन्होंने सभी सम्भव आधिभौतिक और आध्यात्मिक उपचार किऐ, परन्तु ऐसे सभी प्रयत्न निष्फल हुए और ज्वर किसी प्रकार भी कम न हुआ। अन्त में उन्होंने अपने गुरुदेव को उसके सिरहाने बिठलाया, परन्तुं परिणाम पूर्ववत् ही हुआ। यह घटना देखकर मुझे विचार आया कि जब गुरु एक बालक के प्राणों की भी रक्षा करने में असमर्थ हैं, तब उनकी उपयोगिता ही क्या है? और जब उनमें कोई सामर्थ्य ही नहीं, तब फिर शिरडी जाने से क्या प्रयोजन? ऐसा सोचकर

मैंने यात्रा स्थगित कर दी। परन्तु जो होनहार है, वह तो होकर ही रहेगा और वह इस प्रकार हुआ। प्रांताधिकारी नानासाहेब चाँदोरकर बसई को दौरेपर जा रहे थे। वे ठाणा से दादर पहुँचे तथा बसई जाने वाली गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे । उसी समय बांद्रा लोकल आ पहुँची, जिसमें बैठकर वे बांद्रा पहुँचे तथा शिरडीयात्रा स्थगित करने के लिऐ मुझे आड़े हाथों लिया। नानासाहेब का तर्क मुझे उचित तथा सुखदायी प्रतीत हुआ और इसके फलस्वरुप मैंने उसी रात्रि शिरडी जाने का निश्चय किया और सामान बाँधकर शिरडी को प्रस्थान कर दिया। मैंने सीधे दादर जाकर वहाँ से मनमाड की गाड़ी पकड़ने का कार्यक्रम बनाया। इस निश्चय के अनुसार मैंने दादर जाने वाली गाड़ी के डिब्बे में प्रवेश किया। गाड़ी छूटने ही वाली थी कि इतने में एक यवन मेरे डिब्बे में आया और मेरा सामान देखकर मुझसे मेरा गन्तव्य स्थान पूछने लगा। मैंने अपना कार्यक्रम उसे बतला दिया। उसने मुझसे कहा कि मनमाड की गाड़ी दादर पर खड़ी नहीं होती, इसलिये सीधे बोरीबन्दर से होकर जाओ। यदि यह एक साधारण सी घटना घटित न हुई होती तो मैं अपने कार्यक्रम के अनुसार दूसरे दिन शिरडी न पहुँच सकने के कारण अनेक प्रकार की शंका-कुशंकाओं से घिर जाता। परन्तु ऐसा होना ही न था। भाग्य ने साथ दिया और दूसरे दिन ९-१० बजे के पूर्वही मैं शिरडी पहुँच गया। यह सन् १९१० की बात है, जब प्रवासी भक्तों के ठहरने के लिये साठेवाड़ा ही एकमात्र स्थान था। ताँगे से उतरने पर मैं साईबाबा के दर्शनों के लिऐ बड़ा लालायित था। उसी समय भक्तप्रवर श्री. तात्यासाहेब नूलकर मस्जिद से लौटे ही थे। उन्होंने बतलाया कि इस समय श्रीसाईबाबा मस्जिद की मोड़पर ही हैं। अभी केवल उनका प्रारम्भिक दर्शन ही कर लो और फिर स्नानादि से निवृत्त होने के पश्चात्, सुविधा से भेंट करने जाना। यह सुनते ही मैं दौड़कर गया और बाबा की चरणवन्दना की। मेरी प्रसन्नता का पारावार न रहा। मुझे क्या नहीं मिल गया था? मेरा शरीर उल्लसित सा हो गया। क्षुधा और तृषा की सुधि जाती रही। जिस क्षण से उनके भवविनाशक चरणों का स्पर्श प्राप्त हुआ, मेरे जीवन में एक नूतन आनन्द-प्रवाह बहने लगा। एक नई उमंग आ गई। जिन्होंने मुझे बाबा के दर्शनार्थ प्रेरणा, प्रोत्साहन और सहायता पहुँचाई, उनके प्रति मेरा हृदय बारम्बार कृतज्ञता अनुभव करने लगा। मैं उनका सदैव के लिये ऋणी हो गया। उनका यह उपकार मैं कभी भूल न सकूँ गा। यथार्थ में वे ही मेरे कुटुम्बी हैं और उनके ऋण से मै कभी भी मुक्त न हो सकूँगा ।यर्थार्थ में वे ही मेरे कुटुम्बी हैं और उनके ऋण से मैं कभी भी मुक्त न सकूँगा। मैं सदा उनका स्मरण कर उन्हें मानसिक प्रणाम किया करता हूँ। जैसा कि मेरे अनुभव में आया कि साई के दर्शन में ही यह विशेषता है कि विचार परिवर्तन तथा पिछले कर्मों का प्रभाव शीघ्र मंद पड़ने लगता है और शनैःशनैःअनासक्ति और सांसारिक भोगों से वैराग्य बढ़ता जाता है। केवल गत जन्मों के अनेक शुभ संस्कार एकत्रित होनेपर ही ऐसा दर्शन प्राप्त होना सुलभ हो सकता है। पाठको, मैं आपसे शपथपूर्वक कहता हूँ कि यदि आप श्रीसाईबाबा को एक दृष्टि भरकर लेख लेंगे तो आपको सम्पूर्ण विश्व ही साईमय दिखलाई पड़ेगा।

गरमागरम बहस

शिरडी पहुँचने के प्रथम दिन ही बालासाहेब तथा मेरे बीच गुरु की आवश्यकता पर वादविवाद छिड़ गया। मेरा मत था कि स्वतंत्रता त्यागकर पराधीन क्यों होना चाहिऐ तथा जब कर्म करना ही पड़ता है, तब गुरु की आवश्यकता ही कहाँ रही? प्रत्येक को पूर्ण प्रयत्न कर स्वयं को आगे बढ़ाना चाहिऐ। गुरु शिष्य के लिए करता ही क्या है? वह तो सुख से निद्रा का आनंद लेता है। इस प्रकार मैंने स्वतंत्रता का पक्ष लिया और बालासाहेब ने प्रारब्ध का। उन्होंने कहा कि जो विधि-लिखित है, वह घटित हो कर रहेगा; इसमें उच्च कोटि के महापुरुष भी असफल हो गये हैं। कहावत हैं -'' मेरे मन कुछ और है, विधाता के कुछ और।'' फिर परामर्शयुक्त शब्दों में बोले '' भाई साहब, यह निरी विद्वत्ता छोड़ दो। यह अहंकार तुम्हारी कुछ भी सहायता न कर सकेगा।'' इस प्रकार दोनों पक्षों के खंडन-मंडन में लगभग एक घंटा व्यतीत हो गया और सदैव की भाँति कोई निष्कर्ष न निकल सका। इसलिऐ तंग और विवश होकर विवाद स्थगित करना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि मेरी मानसिक शांति भंग हो गई तथा मुझे अनुभव हुआ कि जब तक घोर दैहिक बुद्धि और अहंकार न हो, तब तक विवाद संभव नहीं। वस्तुतः यह अहंकार ही विवाद की जड़ है।

जब अन्य लोगों के साथ मैं मस्जिद गया, तब बाबा ने काकासाहेब को संबोधित कर प्रश्न किया कि साठेवाड़ा में क्या चल रहा था? किस विषय में विवाद था? फिर मेरी ओर दृष्टिपात कर बोले कि इन 'हेमाडपंत' ने क्या कहा। ये शब्द सुनकर मुझे अधिक अचम्भा हुआ। साठेवाड़ा और मस्जिद में पर्याप्त अन्तर था। सर्वज्ञ या अंतर्यामी हुए बिना बाबा को विवाद का ज्ञान कैसे हो सकता था?

मैं सोचने लगा कि बाबा 'हेमाडपंत' के नाम से मुझे क्यों सम्बोधित करते हैं? यह शब्द तो 'हेमाद्रिपंत' का अपभ्रंश है। 'हेमाद्रिपंत' देवगिरि के यादव राजवंशी महाराजा महादेव और रामदेव के विख्यात मंत्री थे। वे 'उच्च कोटि के विद्वान्, उत्तम प्रकृति और 'चतुर्वर्ग चिंतामणि'(जिसमें आध्यात्मिक विषयों का विवेचन है) और 'राजप्रशस्ति' जैसे उत्तम काव्यों के रचयिता थे। उन्होंने ही हिसाब-किताब रखने की नवीन प्रणाली का आविष्कार किया था और बही खाते की पद्धति को जन्म दिया था और कहाँ मैं इसके विपरीत एक अज्ञानी, मूर्ख और मंदमति हूँ। अतः मेरी समझ में यह न आ सका कि मुझे इस विशेष उपाधि से विभूषित करने का क्या तात्पर्य है? गहन विचार करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि कहीं मेरे अहंकार को चूर्ण करने के लिऐ ही तो बाबा ने इस अस्त्र का प्रयोग नहीं किया है, ताकि मैं भविष्य में सदैव के लिए निरभिमानी एवं विनम्र हो जाऊँ, अथवा कहीं यह मेरे वाक्‌चातुर्य के उपलक्ष में मेरी प्रशंसा तो नहीं हैं?

भविष्य पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि बाबा के द्वारा'हेमाडपंत' की उपाधि से विभूषित करना कितना अर्थपूर्ण और भविष्यगोचर था। सर्वविदित है कि कालान्तर में दाभोलकर ने श्रीसाईबाबा संस्थान का प्रबन्ध कितने सुचारु एवं विद्वत्तापूर्ण ढंग से किया था। हिसाब-किताब आदि कितने उत्तम प्रकार से रखे तथा साथ ही साथ महाकाव्य 'साई सच्चरित्र' की रचना भी की। इस ग्रन्थ में महत्वपूर्ण और आध्यात्मिक विषयों जैसे ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, शरणागति व आत्मनिवेदन आदि का समावेश है।

गुरु की आवश्यकता

इस विषय में बाबा ने क्या उद्‌गार प्रकट किऐ, इस पर हेमाडपंत द्वारा लिखित कोई लेख या स्मृतिपत्र प्राप्त नहीं है। परंतु काकासाहेब दीक्षित ने इस विषय पर उनके लेख प्रकाशित किऐ हैं। बाबा से भेंट करने के दूसरे दिन 'हेमाडपंत' और काकासाहेब ने मस्जिद में जाकर घर लौटने की अनुमति माँगी। बाबा ने स्वीकृति दे दी।

किसी ने प्रश्न किया- '' बाबा, कहाँ जाऐं ?''
उत्तर मिला-''ऊपर जाओ।''
प्रश्न- '' मार्ग कैसा है?''।
बाबा- अनेक पंथ हैं। यहाँ से भी एक मार्ग है। परन्तु यह मार्ग दुर्गम है तथा सिंह और भेड़िये भी मिलते हैं।
काकासाहेब- यदि पथ प्रदर्शक भी साथ हो तो?

बाबा- तब कोई कष्ट न होगा। मार्ग-प्रदर्शक तुम्हारी सिंह, भेड़िये और खन्दकों से रक्षा कर तुम्हें सीधे निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा देगा। परन्तु उसके अभाव में जंगल में मार्ग भूलने या गड्ढे में गिर जाने की सम्भावना है। दाभोलकर भी उपयुक्त प्रसंग के अवसर पर वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने सोचा कि जो कुछ बाबा कह रहे हैं, वह '' गुरु की आवश्यकता क्यों हैं?'' इस प्रश्न का उत्तर है(साईलीला भाग१, संख्या ५ व पृष्ठ ४७ के अनुसार)। उन्होंने सदा के लिऐ मन में यह गाँठ बाँध ली कि अब कभी इस विषय पर वादविवाद नहीं करेंगे कि स्वतंत्र या परतंत्र व्यक्ति आध्यात्मिक विषयों के लिऐ कैसा सिद्ध होगा? प्रत्युत्त इसके विपरीत यथार्थ में परमार्थ-लाभ केवल गुरु के उपदेश-पालन में ही निहित है। इन उपदेशों का वर्णन मूल काव्य-ग्रंथ के इसी अध्याय में किया गया है, जिसमें लिखा है कि राम और कृष्ण महान अवतारी होते हुए भी आत्मानुभूति के लिऐ राम को अपने गुरु वसिष्ठ और कृष्ण को अपने गुरु सांदीपनि की शरण में जाना पड़ा था। इस मार्ग में उन्नति प्राप्त करने के लिऐ केवल श्रद्धा और धैर्य - ये ही दो गुण सहायक हैं।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।।

श्री साईबाबा की स्वीकृति, आज्ञा और प्रतिज्ञा, भक्तों को कार्य समर्पण, बाबा की लीलाएँ ज्योतिस्तंभ स्वरुप, मातृप्रेम-रोहिला की कथा, उनके मधुर अमृतोपदेश।

श्री साईबाबा की स्वीकृति और वचन देना

जैसा कि गत अध्याय में वर्णन किया जा चुका है, बाबा ने सच्चरित्र लिखने की अनुमति देते हुए कहा कि सच्चरित्र लेखन के लिऐ मेरी पूर्ण अनुमति है। तुम अपना मन स्थिर कर, मेरे वचनों में श्रद्धा रखो और निर्भय होकर कर्त्तव्य पालन करते रहो। यदि मेरी लीलाएँ लिखी गई तो अविद्या का नाश होगा तथा ध्यान व भक्तिपूर्वक श्रवण करने से, दैहिक बुद्धि नष्ट होकर भक्ति और प्रेम की तीव्र लहर प्रवाहित होगी और जो इन लीलाओं की अधिक गहराई तक खोज करेगा, उसे ज्ञानरुपी अमूल्य रत्न की प्राप्ति हो जायेगी।

इन वचनों को सुनकर हेमाडपंत को अति हर्ष हुआ और वे निर्भय हो गऐ। उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया कि अब कार्य अवश्य ही सफल होगा।

बाबा ने शामा की ओर दृष्टिपात कर कहा-'' जो, प्रेमपूर्वक मेरा नामस्मरण करेगा, मैं, उसकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर दूँगा। उसकी भक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होगी। जो मेरे चरित्र और कृत्यों का श्रद्धापूर्वक गायन करेगा, उसकी मैं हर प्रकार से सदैव सहायता करुँगा। **जो भक्तगण ह्रदय और प्राणों से मुझे चाहते हैं, उन्हें मेरी कथाएँ श्रवण कर स्वभावतः प्रसन्नता होगी। विश्वास रखो कि जो कोई मेरी लीलाओं का कीर्त्तन करेगा, उसे परमानन्द और चिरसन्तोष की उपलब्धि हो जायेगी। यह मेरा वैशिष्ट्य है कि जो कोई अनन्य भाव से मेरी शरण आता है, जो श्रद्धापूर्वक मेरा पूजन, निरन्तर स्मरण और मेरा ही ध्यान किया करता है, उसको मैं मुक्ति प्रदान कर देता हूँ।''** [१]

१. अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेम वहाम्यहम्।। गीता ९ ।।२२।।

'' जो नित्यप्रति मेरा नामस्मरण और पूजन कर मेरी कथाओं और लीलाओं का प्रेमपूर्वक मनन करते हैं, ऐसे भक्तों में सांसारिक वासनाएँ और अज्ञानरुपी प्रवृत्तियाँ कैसे ठहर सकती है? मैं उन्हें मृत्यु के मुख से बचा लेता हूँ।''

'' मेरी कथाएँ श्रवण करने से मुक्ति हो जाएगी। अतः मेरी कथाओं को श्रद्धापूर्वक सुनो, मनन करो। सुख और सन्तोष-प्राप्ति का सरल मार्ग ही यही है। इससे श्रोताओं के चित्त को शांति प्राप्त होगी और जब ध्यान प्रगाढ़ और विश्वास दृढ़ हो जायगा, तब अखंड चैतन्यघन से अभिन्नता प्राप्त हो जायगी। केवल 'साई' 'साई' के उच्चारणमात्र से ही उनके समस्त पाप नष्ट हो जाएगे।''

भिन्न भिन्न कार्यों की भक्तों को प्रेरणा

भगवान अपने किसी भक्त को मन्दिर, मठ, किसी को नदी के तीर पर घाट बनवाने, किसी को तीर्थपर्यटन करने और किसी को भगवत् कीर्त्तन करने एवं भिन्न-भिन्न कार्य करने की प्रेरणा देते हैं। परन्तु उन्होंने मुझे 'साई सच्चरित्र'-लेखन की प्रेरणा की। किसी भी विद्या का पूर्ण ज्ञान न होने के कारण मैं इस कार्य के लिए सर्वथा अयोग्य था। अतः मुझे इस दुष्कर कार्य का दुस्साहस क्यों करना चाहिए? श्री साई महाराज की यथार्थ जीवनी का वर्णन करने की सामर्थ्य किसे है? उनकी कृपा मात्र से ही कार्य सम्पूर्ण होना सम्भव है। इसलिऐ जब मैंने लेखन प्रारम्भ किया तो **बाबा ने मेरा अहं नष्ट कर दिया और उन्होंने स्वयं अपना चरित्र रचा। अतः इस चरित्र का श्रेय उन्हीं को है, मुझे नहीं।** जन्मतः ब्राह्मण होते हुए भी मैं दिव्य चक्षु-विहीन था, अतः'साई सच्चरित्र' लिखने में सर्वथा अयोग्य

था। परन्तु श्रीहरिकृपा से क्या सम्भव नहीं है? मूक भी वाचाल हो जाता है और पंगु भी गिरिपर चढ़ ज़ाता है। अपनी इच्छानुसार कार्य पूर्ण करने की युक्ति वे ही जानें। हारमोनियम और बंसी को यह आभास कहाँ कि ध्वनि कैसे प्रसारित हो रही है? इसका ज्ञान तो वादक को ही है। चन्द्रकांतमणि की उत्पत्ति और ज्वार भाटे का रहस्य मणि अथवा उदधि नहीं, वरन् शशिकलाओं के घटने-बढ़ने में ही निहित है।

बाबा का चरित्रः ज्योतिस्तम्भ स्वरुप

समुद्र में अनेक स्थानोंपर ज्योतिस्तम्भ इसलिऐ बनाऐ जाते हैं, जिससे नाविक चट्टानों और दुर्घटनाओं से बच जाऐं और जहाज को कोई हानि न पहुँचे। इस भवसागर में श्री साईबाबा का चरित्र ठीक उपर्युक्त भाँति ही उपयोगी है। वह अमृत से भी अति मधुर और सांसारिक पथ को सुगम बनाने वाला है। जब वह कानों के द्वारा ह्रदय में प्रवेश करता है, तब दैहिक बुद्धि नष्ट हो जाती है और ह्रदय में एकत्रित करने से, समस्त कुशंकाएँ अदृश्य हो जाती हैं। अहंकार का विनाश हो जाता है तथा बौद्धिक आवरण लुप्त होकर ज्ञान प्रगट हो जाता है। **बाबा की विशुद्ध कीर्त्ति का वर्णन निष्ठापूर्वक श्रवण करने से भक्तों के पाप नष्ठ होंगे। अतः यह मोक्ष प्राप्ति का भी सरल साधन है।** सत्ययुग में शम तथा दम, त्रेता में त्याग, द्वापर में पूजन और कलियुग में भगवत्कीर्तन ही मोक्ष का साधन है। यह अन्तिम साधन, चारों वर्णो के लोगों को साध्य भी है। अन्य साधन, योग, ध्यान-धारणा आदि आचरण करने में कठिन हैं, परन्तु चरित्र तथा हरिकीर्त्तन का श्रवण तो अत्यन्त ही सुलभ है। केवल उनपर ध्यान देने की ही आवश्यकता है। कथा-श्रवण और कीर्त्तन से इन्द्रियों की स्वाभाविक विषयासक्ति नष्ट हो जाती है और भक्त वासना-रहित होकर आत्म साक्षात्कार की ओर अग्रसर हो जाता है। इसी फल को प्रदान करने के हेतु उन्होंने सच्चरित्र का निर्माण कराया। भक्तगण अब सरलतापूर्वक चरित्र का अवलोकन करें औंर साथ ही उनके मनोहर स्वरुप का ध्यान कर, गुरु और भगवत्-भक्ति के अधिकारी बनें तथा निष्काम होकर आत्मसाक्षात्कार को प्राप्त हों। 'साई सच्चरित्र' का सफलतापूर्वक सम्पूर्ण होना, यह साई-महिमा ही समझें, हमें तो केवल एक निमित्त मात्र ही बनाया गया है।

मातृप्रेम

गाय का अपने बछड़े पर प्रेम सर्वविदित ही है। उसके स्तन सदैव दुग्ध से पूर्ण रहते हैं और जब भूखा बछड़ा स्तन की ओर दौड़कर आता है दुग्ध की धारा स्वतः प्रवाहित होने लगती है। उसी प्रकार माता भी अपने बच्चे की आवश्यकता का पहले से ही ध्यान रखती है और ठीक समय पर स्तनपान कराती है। वह बालक का श्रृंगार उत्तम ढंग से करती है, परंतु बालक को इसका कोई भान ही नहीं होता। बालक के सुन्दर श्रृंगारादि को देखकर माता के हर्ष का पारावार नहीं रहता। माता का प्रेम विचित्र, असाधारण और निःस्वार्थ है, जिसकी कोई उपमा नहीं है। ठीक इसी प्रकार सद्‌गुरु का प्रेम अपने शिष्य पर होता है। ऐसा ही प्रेम बाबा का मुझ पर था और उदाहरणार्थ वह निम्न प्रकार थाः-

सन् १९१६ में मैंने नौकरी से अवकाश ग्रहण किया। जो पेन्शन मुझे मिलती थी, वह मेरे कुटुम्ब के निर्वाह के लिऐ अपर्याप्त थी। उसी वर्ष की गुरुपूर्णिमा के दिवस मैं अन्य भक्तों के साथ शिरडी गया। वहाँ अण्णा चिंचणीकर ने स्वतः ही मेरे लिऐ बाबा से इस प्रकार प्रार्थना की, '' इनके ऊपर कृपा करो। जो पेन्शन इन्हें मिलती है, वह निर्वाह-योग्य नहीं है। कुटुम्ब में वृद्धि हो रही है। कृपया और कोई नौकरी दिला दीजिऐ, ताकि इनकी चिन्ता दूर हो और ये सुखपूर्वक रहें।'' बाबा ने उत्तर दिया कि ''इन्हें नौकरी मिल जायेगी, परन्तु अब इन्हें मेरी सेवा में ही आनन्द लेना चाहिए। इनकी इच्छाएँ सदैव पूर्ण होंगी, **इन्हें अपना ध्यान मेरी ओर आकर्षित कर, अधार्मिक तथा दुष्ट जनों की संगति से दूर रहना चाहिऐ।** इन्हें सबसे दया और नम्रता का बर्ताव और अंतःकरण से मेरी उपासना करनी चाहिऐ। यदि ये इस प्रकार आचरण कर सके तो नित्यानन्द के अधिकारी हो जाऐंगे।''

रोहिला की कथा

यह कथा श्री साई बाबा के समस्त प्राणियों पर समान प्रेम की सूचक है। एक समय रोहिला जाति का एक मनुष्य शिरडी में आया। वह ऊँचा- पूरा, सुदृढ़ एवं सुगठित शरीर का था। बाबा के प्रेम से मुग्ध होकर वह शिरडी में ही रहने लगा। वह आठों प्रहर अपनी उच्च और कर्कश ध्वनि में कुरान शरीफ के कलमे पढ़ता और '' अल्लाहो अकबर'' के नारे लगाता था। शिरडी के अधिकांश लोग खेतों में दिन भर काम करने के पश्चात् जब रात्रि में घर

लौटते तो रोहिला की कर्कश पुकारें उनका स्वागत करती थीं। इस कारण उन्हें रात्रि में विश्राम न मिलता था, जिससे वे अधिक कष्ट और असुविधा का अनुभव करने लगे। कई दिनों तक तो वे स्तब्ध रहे, परन्तु जब कष्ट असहनीय हो गया, तब उन्होंने बाबा के समीप जाकर रोहिला को मना कर इस उत्पात को रोकने की प्रार्थना की। बाबा ने उन लोगों की इस प्रार्थना पर ध्यान दिया। इसके विपरीत गॉंववालों को आड़े हाथों लेते हुए बोले कि वे अपने कार्य पर ध्यान दें और रोहिला की ओर ध्यान न दें। बाबा ने उनसे कहा कि रोहिला की पत्नी बुरे स्वभाव की है और वह रोहिला को तथा मुझे अधिक कष्ट पहुँचाती है, परन्तु वह उसके कलमों के समक्ष उपस्थित होने का साहस करने में असमर्थ है और इसी कारण वह शांति और सुख में है। यथार्थ में रोहिला की कोई पत्नी न थी। बाबा का संकेत केवल कुविचारों की ओर था। अन्य विषयों की अपेक्षा बाबा प्रार्थना और ईश-आराधना को महत्त्व देते थे। अतः उन्होंने रोहिला के पक्ष का समर्थन कर, ग्रामवासियों को शांतिपूर्वक थोड़े समय तक उत्पात सहन करने का परामर्श दिया।

बाबा के मधुर अमृतोपदेश

एक दिन दोपहर की आरती के पश्चात भक्तगण अपने घरों को लौट रहे थे, तब बाबा ने निम्नलिखित अति सुन्दर उपदेश दियाः-

''तुम चाहे कहीं भी रहो, जो इच्छा हो, सो करो; परन्तु यह सदैव स्मरण रखो कि जो कुछ तुम करते हो, वह सब मुझे ज्ञात है। **मैं ही समस्त प्राणियों का प्रभु और घट-घट में व्याप्त हूँ। मेरे ही उदर में समस्त जड़ व चेतन प्राणी समाऐ हुए हैं।** मैं ही समस्त ब्रह्मांड का नियंत्रणकर्ता व संचालक हूँ। मैं ही उत्पत्ति, स्थिति व संहारकर्त्ता हूँ। मेरी भक्ति करने वालों को कोई हानि नहीं पहुँचा सकता। मेरे ध्यान की उपेक्षा करनेवाला, माया के पाश में फँस जाता है। समस्त जन्तु, चीटियाँ तथा दृश्यमान, परिवर्त्तमान और स्थायी विश्व मेरे ही स्वरुप हैं।''

इस सुन्दर तथा अमूल्य उपदेश को श्रवण कर मैंने तुरन्त यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि अब भविष्य में अपने गुरु के अतिरिक्त अन्य किसी मानव की सेवा न करूँगा । '' तुझे नौकरी मिल जाऐगी''- बाबा के इन वचनों का विचार मेरे मस्तिष्क में बारंबार चक्कर काटने लगा। मुझे विचार आने लगा, क्या सचमुच ऐसा घटित होगा? भविष्य की घटनाओं से स्पष्ट है कि बाबा के वचन सत्य निकले और मुझे अल्पकाल के लिऐ नौकरी मिल गई। इसके पश्चात् मैं स्वतंत्र होकर एकचित्त से जीवनपर्यन्त बाबा की ही सेवा करता रहा।

इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व मेरी पाठकों से विनम्र प्रार्थना है कि वे समस्त बाधाएँ - जैसे आलस्य, निद्रा, मन की चंचलता व इन्द्रिय-आसक्ति दूर कर और एकचित्त हो अपना ध्यान बाबा की लीलाओं की ओर दें और स्वाभाविक प्रेम निर्माण कर भक्ति-रहस्य कों जानें तथा अन्य साधनाओं में व्यर्थ श्रमित न हों। **उन्हें केवल एक ही सुगम उपाय का पालन करना चाहिऐ और वह है श्रीसाईलीलाओं का श्रवण।** इससे उनका अज्ञान नष्ट होकर मोक्ष का द्वार खुल जाऐगा। जिसप्रकार अनेक स्थानों मे भ्रमण करता हुआ भी लोभी पुरुष अपने गड़े हुऐ धन के लिऐ सतत चिन्तित रहता है, उसी प्रकार श्री साई को अपने हृदय में धारण करो। अगले अध्याय में श्री साई बाबा के शिरडी आगमन का वर्णन होगा।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ४ ।।

श्री साई बाबा का शिरडी में प्रथम आगमन सन्तों का अवतार कार्य, पवित्र तीर्थ शिरडी, श्री साई बाबा का व्यक्तित्त्व, गौली महाराज का अनुभव, श्री विठ्ठल का प्रगट होना, क्षीरसागर की कथा, दासगणू का प्रयाग- स्नान, श्रीसाई बाबा का शिरडी में प्रथम आगमन, तीन वाड़े।

संतो का अवतार कार्य

भगवद्गीता (चौथा अध्याय ७-८) में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि '' जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं अवतार धारण करता हूँ। धर्म-स्थापन, दुष्टों का विनाश तथा साधुजनों के परित्राण के लिऐ मैं युग-युग में जन्म लेता हूँ।'' साधु और संत भगवान के प्रतिनिधिस्वरुप हैं। वे उपयुक्त समय पर प्रगट होकर अपनी कार्यप्रणाली द्वारा अपना अवतार-कार्य पूर्ण करते हैं। अर्थात् जब ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने कर्त्तव्यों से विमुख हो जाते हैं; जब धार्मिक उपदेशों की उपेक्षा होने लगती है; जब शूद्र उच्च जातियों के अधिकार छीनने लगते हैं, जब धर्म के आचार्यो का अनादर तथा निंदा होने लगती हैं; जब लोग निषिध्द भोज्य पदार्थो और मदिरा आदि का सेवन करने लगते हैं; जब धर्म की आड़ में निंदित कार्य होने लगते हैं; जब भिन्न -भिन्न धर्मावलम्बी परस्पर लड़ने लगते है; जब धार्मिक उपदेशों की उपेक्षा होने लगती है; जब प्रत्येक व्यक्ति सोचने लगता है कि मुझसे श्रेष्ठ विद्वान् दूसरा नहीं हैं; जब ब्राह्मण संध्यादि कर्म छोड़ देते हैं; कर्मठ पुरुषों को धार्मिक कृत्यों में अरुचि उत्पन्न हो जाती है जब योगी ध्यानादि कर्म छोड़ देते हैं और जब जनसाधारण की ऐसी धारणा हो जाती है कि केवल **धन, संतान और स्त्री ही सर्वस्व है तथा इस प्रकार जब लोग सत्य-मार्ग से विचलित होकर अधःपतन की ओर अग्रसर होने लगते हैं, तब संत प्रगट होकर अपने उपदेशों एवं आचरण के द्वारा धर्म की संस्थापना करते हैं।** वे समुद्र के ज्योतिस्तम्भ की तरह हमारा उचित मार्गदर्शन करते तथा सत्य पथ पर चलने को प्रेरित करते हैं। इसी मार्ग पर अनेकों संत-निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, मुक्ताबाई, नामदेव, गोरा, गोणाई, एकनाथ,तुकाराम, नरहरि, नरसी भाई,सजन कसाई, सावंता माली और रामदास तथा कई अन्य संत सत्य-मार्ग का दिग्दर्शन कराने के हेतु भिन्न-भिन्न अवसरों पर प्रकट हुए और इन सबके पश्चात् शिरडी में श्री साई बाबा का अवतार हुआ।

पवित्र तीर्थ शिरडी

अहमदनगर जिले में गोदावरी नदी के तट बड़े ही भाग्यशाली हैं, जिन पर अनेक संतों ने जन्म धारण किया और अनेकों ने वहाँ आश्रय पाया। ऐसे संतों में श्री ज्ञानेश्वर महाराज प्रमुख थे। शिरडी, अहमदनगर जिले के राहाता तालुका में है। गोदावरी नदी पार करने के पश्चात् मार्ग सीधा शिरडी को जाता है। आठ मील चलने पर जब आप नीमगाँव पहुँचेंगे तो वहाँ से शिरडी दृष्टिगोचर होने लगती है। कृष्णानदी के तट पर अन्य तीर्थस्थान गाणगापूर, नरसिंहवाड़ी और औदुम्बर के समान ही शिरडी भी प्रसिद्ध तीर्थ है। जिस प्रकार दामाजी ने मंगलवेढ़ा को (पंढरपुर के समीप), समर्थ रामदास ने सज्जनगढ़ को, दत्तावतार श्रीनरसिंह सरस्वती ने वाड़ी को पवित्र किया, उसी प्रकार श्री साईनाथ ने शिरडी में अवतीर्ण होकर उसे पावन बनाया।

श्री साईबाबा का व्यक्तित्व

श्री साईबाबा के सान्निध्य से शिरडी कामहत्त्व विशेष बढ़ गया। अब हम उनके चरित्र का अवलोकन करेंगे। उन्होंने इस भवसागर पर विजय प्राप्त कर ली थी, जिसे पार करना महान् दुष्कर तथा कठिन है। शांति उनका आभूषण था तथा वे ज्ञान की साक्षात् प्रतिमा थे। वैष्णव भक्त सदैव वहाँ आश्रय पाते थे। दानवीरों में वे राजा कर्ण के समान दानी थे। वे समस्त सारों के साररुप थे। ऐहिक पदार्थो से उन्हें अरुचि थी। सदा आत्मस्वरुप में निमग्न रहना ही उनके जीवन का मुख्य ध्येय था। अनित्य वस्तुओं का आकर्षण उन्हें छू भी नहीं गया था। उनका ह्रदय शीशे के सदृश उज्जल था। उनके श्री-मुख से सदैव अमृत वर्षा होती थी। अमीर और गरीब उनके लिऐ दोनों एक समान थे। मान-अपमान की उन्हें किंचित्मात्र भी चिंता न थी। वे निर्भय होकर सम्भाषण करते, भाँति-भाँति के लोगों से

मिलजुलकर रहते, नर्त्तकियों का अभिनय तथा नृत्य देखते और गजल-कव्वालियाँ भी सुनते थे। इतना सब करते हुए भी उनकी समाधि किंचित्‌मात्र भी भंग न होती थी। अल्लाह का नाम सदा उनके ओठों पर था। जब दुनिया जागती तो वे सोते और जब दुनिया सोती तो वे जागते थे। उनका अन्तःकरण प्रशान्त महासागर की तरह शांत था। न उनके आश्रम का कोई निश्चय कर सकता था और न उनकी कार्यप्रणाली का अन्त पा सकता था। कहने के लिऐ तो वे एक स्थान पर निवास करते थे, परन्तु विश्व के समस्त व्यवहारों व व्यापारों का उन्हें भली-भाँति ज्ञान था। उनके दरबार का रंग ही निराला था। वे प्रतिदिन अनेक किंवदंतियाँ कहते थे, परन्तु उनकी अखंड शांति किंचित्‌मात्र भी विचलित न होती थी। वे सदा मस्जिद की दीवार के सहारे बैठे रहते थे तथा प्रातः मध्याह्न और सायंकाल लेंडी और चावड़ी की ओर वायु-सेवन करने जाते तो भी सदा आत्मस्थित ही रहते थे। स्वतः सिद्ध होकर भी वे साधकों के समान आचरण करते थे। वे विनम्र, दयालु तथा अभिमानरहित थे। उन्होंने सबको सदा सुख पहुँचाया। ऐसे थे श्री साईबाबा, जिनके श्री-चरणों का स्पर्श कर शिरडी पावन बन गई। उसका महत्त्व असाधारण हो गया। जिस प्रकार ज्ञानेश्वर ने आलंदी और एकनाथ ने पैठण का उत्थान किया, वही गति श्री साईबाबा द्वारा शिरडी को प्राप्त हुई। शिरडी के फूल, पत्ते, कंकड़ और पत्थर भी धन्य हैं, जिन्हें श्री साई चरणाम्बुजों का चुम्बन तथा उनकी चरण-रज मस्तक पर धारण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भक्तगण को शिरडी एक दूसरा पंढरपूर, जगन्नाथपुरी, द्वारका, बनारस(काशी) महाकालेश्वर तथा गोकर्ण महाबलेश्वर बन गई। श्री साई का दर्शन करना ही भक्तों का वेदमंत्र था, जिसके परिणामस्वरुप आसक्ति घटती और आत्मदर्शन का पथ सुगम होता था। उनका श्रीदर्शन ही योग-साधन था और उनसे वार्तालाप करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते थे। उनका पादसेवन करना ही त्रिवेणी(प्रयाग) स्नान के समान था तथा चरणामृत पान करने मात्र से ही समस्त इच्छाओं की तृप्ति होती थी। उनकी आज्ञा हमारे लिऐ वेद सदृश थी। प्रसाद तथा उदी ग्रहण करने से चित्त की शुद्धि होती थी। वे ही हमारे राम और कृष्ण थे, जिन्होंने हमें मुक्ति प्रदान की; वे ही हमारे परब्रह्म थे। वे छन्दों से परे रहते तथा कभी निराश व हताश नहीं होते थे। वे सदा आत्म-स्थित, चैतन्यघन तथा आनन्द की मंगलमूर्ति थे। कहने को तो शिरडी उनका मुख्य केन्द्र था, परन्तु उनका कार्यक्षेत्र पंजाब, कलकत्ता, उत्तरी भारत, गुजरात, ढाका और कोकण तक विस्तृत था। श्री साई बाबा की कीर्त्ति दिन-प्रतिदिन चारो ओर फैलने लगी और जगह-जगहसे उनके दर्शनार्थ आकर भक्त लाभ उठाने लगे। केवल दर्शन से ही मनुष्यों, चाहे वे शुद्ध अथवा अशुद्ध ह्रदय के हों, के चित्त को परम शांति मिल जाती

१. सुखिया सब संसार है, खाये अरु सोये ।
दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोये।। - कबीर

थी। उन्हें उसी आनन्द का अनुभव होता था, जैसा कि पंढरपुर में श्री विठ्ठल के दर्शन से होता है। यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है। देखिऐ, एक भक्त ने यही अनुभव पाया हैः-

गौली बुवा

लगभग ९५ वर्ष के वयोवृद्ध भक्त, जिनका नाम गौली बुवा था, पंढरी के एक वारकरी थे। वे ८ मास पंढरपुर तथा ४ मास (आषाढ़ से कार्तिक तक) गंगातट पर निवास करते थे। सामान ढोने के लिऐ वे एक गधे को अपने पास रखते और एक शिष्य भी सदैव उनके साथ रहता था। वे प्रतिवर्ष वारी लेकर पंढरपुर जाते और लौटते समय श्री बाबा के दर्शनार्थ शिरडी आते थे। बाबा पर उनका अगाध प्रेम था। वे बाबा की ओर एक टक निहारते और कह उठते थे कि ये तो श्री पंढरीनाथ, श्री विठ्ठल के अवतार है, जो अनाथ-नाथ, दीन दयालु और दीनों के नाथ हैं। गौली महाराज श्री विठोबा के परम भक्त थे। उन्होंने अनेक बार पंढरी की यात्रा की तथा प्रत्यक्ष अनुभव किया कि श्री साई बाबा सचमुच में ही पंढरीनाथ है।

विठ्ठल स्वयं प्रकट हुए

श्री साई बाबा की ईश्वर-चिंतन और भजन में विशेष अभिरुचि थी। वे सदैव ''अल्लाह मालिक'' पुकारते तथा भक्तों से कीर्त्तन-सप्ताह करवाते थे। इसे ''नामसप्ताह'' भी कहते है। एक बार उन्होंने दासगणू को कीर्त्तनसप्ताह करने की आज्ञा दी। दासगणूने बाबा से कहा कि '' आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है; परन्तु इस बात का आश्वासन मिलना चाहिए कि सप्ताह के अंत में विठ्ठल अवश्य प्रगट होंगे। बाबा ने अपना ह्रदय स्पर्श करते हुए कहा कि विठ्ठल अवश्य प्रगट होंगे। परन्तु साथ ही भक्तों में श्रद्धा व तीव्र उत्सुकता का होना भी अनिवार्य है। ठाकुर नाथ की डंकपुरी, विठ्ठल की पंढरी, रणछोड़ की व्दारका यहीं तो है। किसी को दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। क्या विठ्ठल

कहीं बाहर से आयेंगे? वे तो यहीं विराजमान हैं। **जब भक्तों में प्रेम और भक्ति का स्त्रोत प्रवाहित होगा तो विठ्ठल स्वयं ही यहाँ प्रगट हो जायेंगे।**

सप्ताह समाप्त होने के बाद विठ्ठल भगवान इस प्रकार प्रकट हुए। काकासाहेब दीक्षित सदैव की भाँति स्नान करने के पश्चात् जब ध्यान करने को बैठे तो उन्हें विठ्ठल के दर्शन हुए। दोपहर के समय जब वे् बाबा के दर्शनार्थ मस्जिद पहुँचे तो बाबा ने उनसे पूछा '' क्यों विठ्ठल पाटील आऐ थे न ? क्या तुम्हें उनके दर्शन हुए? वे बहुत चंचल है। उनको दृढता से पकड़ लो । यदि थोड़ी भी असावधानी की तो वे बचकर निकल जायेंगे।'' यह प्रातःकाल की घटना थी और दोपहर के समय उन्हें पुनः दर्शन हुए। उसी दिन एक चित्र बेचने वाला विठोबा के २५-३० चित्र लेकर वहाँ बेचने को आया। यह चित्र ठीक वैसा ही था, जैसा कि काकासाहेब दीक्षित को ध्यान में दर्शन हुए थे। चित्र देखकर और बाबा के शब्दों का स्मरण कर काकासाहेब को बड़ा विस्मय और प्रसन्नता हुई। उन्होंने एक चित्र सहर्ष खरीद लिया और उसे अपने देवघर में प्रतिष्ठित कर दिया ।

ठाणा के अवकाशप्राप्त मामलतदार श्री. बी.व्ही. देव ने अपने अनुसंधान के व्दारा यह प्रमाणित कर दिया है कि शिरडी पंढरपुर की परिधि में आती है। दक्षिण में पंढरपुर श्रीकृष्ण का प्रसिद्ध स्थान है, अतः शिरडी की द्वारका है। (साई लीला पत्रिका भाग १२, अंक १,२,३ के अनुसार)

द्वारका की एक और व्याख्या सुनने में आई है, जो कि कै.नारायण अय्यर द्वारा लिखित ''भारतवर्ष का स्थायी इतिहास'' में स्कन्दपुराण (भाग२,पृष्ठ ९०) से उद्धृत की गई है। वह इस प्रकार हैः-

'' चतुर्वर्णामपि वर्गाणां यत्र द्वाराणि सर्वतः।
अतो द्वारावतीत्युक्ता विद्वद्भिस्तत्ववादिभिः।।''

जो स्थान चारों वर्णों के लोगों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिऐ सुलभ हो, दार्शनिक लोग उसे द्वारका के नाम से पुकारते हैं। शिरडी में बाबा की मस्जिद केवल चारों वर्णों के लिऐ ही नहीं, अपितु दलित, अस्पृश्य और भागोजी सिंदिया जैसे कोढ़ी आदि सब के लिऐ खुली थी। अतः शिरडी को द्वारका' कहना ही सर्वथा उचित है।

भगवंतराव क्षीरसागर की कथा,

श्री विठ्ठलपूजन में बाबा को कितनी रुचि थी, यह भगवंतराव क्षीरसागर की कथा से स्पष्ट है। भगवंतराव के पिता विठोबा के परम भक्त थे, जो प्रतिवर्ष पंढरपुर को वारी लेकर जाते थे। उनके घर में एक विठोबा की मूर्ति थी, जिसकी वे नित्यप्रति पूजा करते थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र भगवंतराव ने वारी, पूजन श्राद्ध इत्यादि समस्त कर्म करना छोड़ दिया। जब भगवंतराव शिरडी आए तो बाबा उन्हें देखते ही कहने लगे कि '' इनके पिता मेरे परम मित्र थे। इसी कारण मैंने इन्हें यहाँ बुलाया है। इन्होंने कभी नैवेद्य अर्पण नही किया तथा मुझे और विठोबा को भूखों मारा हैं। इसलिये मैने इन्हें यहाँ आने को प्रेरित किया है। अब मैं इन्हें हठपूर्वक पूजा में लगा दूँगा।''

दासगणू का प्रयागस्नान

गंगा और यमुना नदी के संगम पर प्रयाग एक प्रसिद्ध पवित्र तीर्थस्थान है। हिन्दुओं की ऐसी भावना है कि वहाँ स्नानादि करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते है। इसी कारण प्रत्येक पर्व पर सहस्त्रों भक्तगण वहाँ जाते हैं और स्नान का लाभ उठाते हैं। एक बार दासगणू ने भी वहाँ जाकर स्नान करने का निश्चय किया । इस विचार से वे बाबा से आज्ञा लेने उनके पास गए। बाबा ने कहा कि '' **इतनी दूर व्यर्थ भटकने की क्या आवश्यकता है? अपना प्रयाग तो यहीं है।** मुझ पर विश्वास करो। '' आश्चर्य। महान् आश्चर्य ! जैसे ही दास गणू बाबा के चरणों पर नत हुए तो बाबा के श्री चरणों से गंगा-यमुना की धारा वेग से प्रवाहित होने लगी। यह चमत्कार देखकर दास गणू का प्रेम और भक्ति उमड़ पड़ी। आँखों से अश्रुओं की धारा बहने लगी। उन्हें कुछ अंतःस्फूर्ति हुई और उनके मुख से श्री साई बाबा की स्त्रोतस्विनी स्वतः प्रवाहित होने लगी।

श्री साई बाबा का शिरडी में प्रथम आगमन

श्री साई बाबा के माता पिता, उनके जन्म और जन्म-स्थान का किसी को भी ज्ञान नहीं है। इस सम्बन्ध में बहुत छानबीन की गई । बाबा से तथा अन्य लोगों से भी इस विषय में पूछताछ की गई, परन्तु कोई संतोषप्रद उत्तर अथवा सूत्र हाथ न लग सका। यथार्थ में हम लोग इस विषय में सर्वथा अनभिज्ञ हैं। नामदेव और कबीरदास जी का जन्म अन्य लोगों की भाँति नहीं हुआ था। वे बाल-रुप में प्रकृति की गोद में पाए गए थे। नामदेव भीमरथी नदी के तीर पर गोनाई को और कबीर भागीरथी नदी के तीर पर तमाल को पड़े हुए मिले थे और ऐसा ही श्री साई बाबा के सम्बन्ध में भी था। वे शिरडी में नीम-वृक्ष के तले सोलह वर्ष की तरुणावस्था में स्वयं भक्तों के कल्याणार्थ प्रकट हुए थे। उस समय भी वे पूर्ण ब्रह्मज्ञानी प्रतीत होते थे। स्वप्न में भी उनको किसी लौकिक पदार्थ की इच्छा नहीं थी। उन्होंने माया को ठुकरा दिया था और मुक्ति उनके चरणों में लोटती थी। शिरडी ग्राम की एक वृद्ध स्त्री नाना चोपदार की माँ ने उनका इस प्रकार वर्णन किया है- एक तरुण, स्वस्थ, फुर्तीला तथा अति रुपवान् बालक सर्वप्रथम नीम वृक्ष के नीचे समाधि में लीन दिखाई पड़ा । सर्दी व गर्मी की उन्हें किंचित्मात्र भी चिंता न थी। उन्हें इतनी अल्प आयु में इस प्रकार कठिन तपस्या करते देखकर लोगों को महान् आश्चर्य हुआ। दिन में वे किसी से भेंट नहीं करते थे और रात्रि में निर्भय होकर एकांत में घूमते थे। लोग आश्चर्यचकित होकर पूछते फिरते थे कि इस युवक का कहाँ से आगमन हुआ है? उनकी बनावट तथा आकृति इतनी सुन्दर थी कि एक बार देखने मात्र से ही लोग आकर्षित हो जाते थे। वे सदा नीम वृक्ष के नीचे बैठे रहते थे और किसी के द्वार पर न जाते थे । यद्यपि वे देखने में युवक प्रतीत होते थे, परन्तु उनका आचरण महात्माओं के सदृश था। वे त्याग और वैराग्य की साक्षात् प्रतिमा थे। एक बार एक आश्चर्यजनक घटना हुई। एक भक्त को भगवान खंडोबा का संचार हुआ। लोगों ने शंका-निवारणार्थ उनसे प्रश्न किया कि '' हे देव! कृपया बतलाइये कि ये किस भाग्यशाली पिता की संतान है और इनका कहाँ से आगमन हुआ है?'' भगवान् खंडोबा ने एक कुदाली मँगवाई और एक निर्दिष्ट स्थान पर खोदने का संकेत किया। जब वह स्थान पूर्ण रुप से खोदा गया तो वहाँ एक पत्थर के नीचे ईंट पाई गईं। पत्थर को हटाते ही एक द्वार दिखा, जहाँ चार दीप जल रहे थे। उन दरवाजों का मार्ग एक गुफा में जाता था, जहाँ गौमुखी आकार की इमारत, लकड़ी के तख्ते, मालायें आदि दिखाई पड़ीं। भगवान् खंडोबा कहने लगे कि इस युवक ने इस स्थान पर बारह वर्ष तपस्या की है। तब लोग युवक से प्रश्न करने लगे। परन्तु उसने यह कहकर बात टाल दी कि यह मेरे श्री गुरुदेव की पवित्र भूमि है तथा मेरा पूज्य स्थान है और लोगों से उस स्थान की भली भाँति रक्षा करने की प्रार्थना की। तब लोगों ने उस दरवाजे को पूर्ववत् बन्द कर दिया। जिस प्रकार अश्वत्थ तथा औदुम्बर वृक्ष पवित्र माने जाते है, उसी प्रकार बाबा ने भी इस नीम वृक्ष को उतना ही पवित्र माना और प्रेम किया। म्हालसापति तथा शिरडी के अन्य भक्त इस स्थान को बाबा के गुरु का समाधि-स्थान मानकर सदैव नमन किया करते थे।

तीन वाड़े

नीम वृक्ष के आसपास की भूमि श्री हरी विनायक साठे ने मोल ली और उस स्थान पर एक विशाल भवन का निर्माण किया, जिसका नाम साठे - वाड़ा रखा गया । बाहर से आने वाले यात्रियों के लिए वह वाड़ा ही एकमात्र विश्राम स्थान था, जहाँ सदैव भीड़ रहा करती थी। नीम वृक्ष के नीचे चारों ओर चबूतरा बाँधा गया । सीढ़ियों के नीचे दक्षिण की ओर एक छोटा सा मन्दिर है, जहाँ भक्त लोग चबूतरे के ऊपर उत्तराभिमुख होकर बैठते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि जो भक्त गुरुवार तथा शुक्रवार की संध्या को वहाँ धूप, अगरबत्ती आदि सुगन्धित पदार्थ जलाते है, वे ईश-कृपा से सदैव सुखी होंगे। यह वाड़ा बहुत पुराना तथा जीर्ण-शीर्ण स्थिति में था तथा इसके जीर्णोद्धार की नितान्त आवश्यकता थी, जो संस्थान द्वारा पूर्ण कर दी गई । कुछ समय के पश्चात् एक द्वितीय वाड़े का निर्माण हुआ, जिसका नाम दीक्षित-वाड़ा रख गया। काकासाहेब दीक्षित, कानूनी सलाहकार (Solicitor) तब इंग्लैंड में थे, तब वहाँ उन्हें किसी दुर्घटना से पैर में चोट आ गई थी। उन्होंने अनेक उपचार किऐ, परन्तु पैर अच्छा न हो सका। नानासाहेब चाँदोरकर ने उन्हें बाबा की कृपा प्राप्त करने का परामर्श दिया। इसलिऐ उन्होंने सन्१९०९ में बाबा के दर्शन किऐ। उन्होंने बाबा से पैर के बदले अपने मन की पंगुता दूर करने की प्रार्थना की। बाबा के दर्शनों से उन्हें इतना सुख प्राप्त हुआ कि उन्होंने स्थायी रुप से शिरडी में रहना स्वीकार कर लिया और इसी कारण उन्होंने अपने तथा भक्तों के हेतु एक वाड़े का निर्माण कराया। इस भवन का शिलान्यास दिनांक ९-१२-१९१० को किया गया। उसी दिन अन्य दो विशेष घटनाएँ घटित हुई -(१) श्री दादासाहेब खापर्डे को घर वापस लौटने की अनुमति प्राप्त हो गई और (२) चावड़ी में रात्रि को आरती आरम्भ हो गई । कुछ समय में वाड़ा सम्पूर्ण रुप से बन गया और रामनवमी (१९११)के शुभ अवसर पर उसका यथाविधि उद्‌घाटन कर दिया गया। इसके बाद एक और वाड़ा-मानो एक शाही भवन-नागपुर के प्रसिद्ध श्रीमंत बूटी ने बनवाया। इस भवन के निर्माण में बहुत धनराशि लगाई गई । उनकी समस्त निधि सार्थक हो गई, क्योंकि बाबा का शरीर अब वहीं विश्रान्ति पा रहा है और फिलहाल वह

'समाधि मंदिर' के नाम से विख्यात है। इस मंदिर के स्थान पर पहले एक बगीचा था, जिसमें बाबा स्वयं पौधों को सींचते और उनकी देखभाल किया करते थे। जहाँ पहले एक छोटी सी कुटी भी नहीं थी, वहाँ तीन-तीन वाड़ों का निर्माण हो गया। इन सब में साठे-वाड़ा पूर्वकाल में बहुत ही उपयोगी था।

बगीचे की कथा, वामन तात्या की सहायता से स्वयं बगीचे की देखभाल, शिरडी से श्रीसाई बाबा की अस्थायी अनुपस्थिति तथा चाँद पाटील की बारात में पुनः शिरडी में लौटना, देवीदास, जानकीदास और गंगागीर की संगति, मोहिद्दीन तम्बोली के साथ कुश्ती,मस्जिद में निवास, श्री. डेंगले व अन्य भक्तों पर प्रेम तथा अन्य घटनाओं का अगले अध्याय में वर्णन किया गया है।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ५ ।।

चाँद पाटील की बारात के साथ श्री साई बाबा का पुनः आगमन, अभिनंदन तथा ' श्री साई' शब्द से सम्बोधन, अन्य संतों से भेंट, वेश-भूषा व नित्य कार्यक्रम, पादुकाओं की कथा, मोहिद्दीन के साथ कुश्ती, मोहिद्दीन का जीवन परिवर्तन, जल का तेल में रुपान्तर, मिथ्या गुरु जौहरअली।

जैसा गत अध्याय में कहा गया है, मैं अब श्री साई बाबा के शिरडी से अंतर्द्धान होने के पश्चात् उनका शिरडी में पुनः किस प्रकार आगमन हुआ, इसका वर्णन करुँगा।

चाँद पाटील की बारात के साथ पुनः आगमन

जिला औरंगाबाद (निजाम स्टेट) के धूप ग्राम में चाँद पाटील नामक एक धनवान् मुस्लिम रहते थे। जब वे औरंगाबाद को जा रहे थे तो मार्ग में उनकी घोड़ी खो गई। दो मास तक उन्होंने उसकी खोज में घोर परिश्रम किया, परन्तु उसका कहीं पता न चल सका । अन्त में वे निराश होकर उसकी जीन को पीठ पर लटकाए औरंगाबाद से लौट रहे थे। तब लगभग १४ मील चलने के पश्चात् उन्होंने एक आम्रवृक्ष के नीचे एक फकीर को चिलम तैयार करते देखा, जिसके सिर पर एक टोपी, तन पर कफनी और पास में एक सटका था। फकीर के बुलाने पर चाँद पाटील उनके पास पहुँचे। जीन देखते ही फकीर ने पूछा '' यह जीन कैसी?'' चाँद पाटील ने निराशा के स्वर में कहा '' क्या कहूँ? मेरी एक घोड़ी थी, वह खो गई है और यह उसी की जीन है।''

फकीर बोले-''थोड़ा नाले की ओर भी तो ढूँढ़ो।'' चाँद पाटील नाले के समीप गए तो अपनी घोड़ी को वहाँ चरते देखकर उन्हें महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा कि फकीर कोई सामान्य व्यक्ति नहीं, वरन् कोई उच्च कोटि का मानव दिखलाई पड़ता है। घोड़ी को साथ लेकर जब वे फकीर के पास लौटकर आऐ, तब तक चिलम भरकर तैयार हो चुकी थी। केवल दो वस्तुओं की और आवश्यकता रह गई थी। एक तो चिलम सुलगाने के लिये अग्नि और द्वितीय साफी को गीला करने के लिऐ जल की। फकीर ने अपना चिमटा भूमि में घुसेड़ कर ऊपर खींचा तो उसके साथ ही एक प्रज्वलित अंगारा बाहर निकला और वह अंगारा चिलम पर रखा गया। फिर फकीर ने सटके से ज्योंही बलपूर्वक जमीन पर प्रहार किया, त्योंही वहाँ से पानी निकलने लगा और उसने साफी को भिंगोकर चिलम को लपेट लिया। इस प्रकार सब प्रबन्ध करं फकीर ने चिलम पी और तत्पश्चात् चाँद पाटील को भी दी। यह सब चमत्कार देखकर चाँद पाटील का बड़ा विस्मय हुआ। चाँद पाटील ने फकीर से अपने घर चलने का आग्रह किया। दूसरे दिन चाँद पाटील के साथ फकीर उनके घर चला गया और वहाँ कुछ समय तक रहा। पाटील धूप ग्राम का अधिकारी था। उसके घर पर अपने साले के लड़के का विवाह होने वाला था और बारात शिरडी को जाने वाली थी। इसलिये चाँद पाटील शिरडी को प्रस्थान करने का पूर्ण प्रबन्ध करने लगा। फकीर भी बारात के साथ ही गया । विवाह निर्विन्घ समाप्त हो गया और बारात कुशलतापूर्वक धूप ग्राम को लौट आई । परन्तु वह फकीर शिरडी में ही रुक गया और जीवनपर्यन्त वहीं रहा।

फकीर को 'साई' नाम कैसे प्राप्त हुआ?

जब बारात शिरडी में पहुँची तो खंडोबा के मंदिर के समीप म्हालसापति के खेत में एक वृक्ष के नीचे ठहराई गई । खंडोबा के मंदिर के सामने ही सब बैलगाड़ियाँ खोल दी गई और बारात के सब लोग एक-एक करके नीचे उतरने लगे। तरुण फकीर को उतरते देख म्हालसापति ने ''आओ साई'' कहकर उनका अभिनन्दन किया तथा अन्य उपस्थित लोगों ने भी 'साई' शब्द से ही सम्बोधन कर उनका आदर किया । इसके पश्चात् वे 'साई' नाम से ही प्रसिद्ध हो गऐ।

अन्य संतों से सम्पर्क

शिरडी आने पर श्री साई बाबा मस्जिद में निवास करने लगे । बाबा के शिरडी में आने के पूर्व देवीदास नाम के एक सन्त अनेक वर्षों से वहाँ रहते थे । बाबा को वे बहुत प्रिय थे। वे उनके साथ कभी हनुमान मन्दिर में और कभी चावड़ी में रहते थे । कुछ समय के पश्चात् जानकीदास नाम के एक संत का भी शिरडी में आगमन हुआ । अब बाबा जानकीदास से वार्त्तालाप करने में अपना बहुत-सा समय व्यतीत करने लगे। जानकीदास भी कभी-कभी बाबा के स्थान पर चले आया करते थे और पुणताम्बे के श्री गंगागीर नामक एक पारिवारिक वैश्य संत भी बहुधा बाबा के पास आया-जाया करते थे। जब प्रथम बार उन्होंने श्री साई बाबा को बगीचा-सिंचन के लिऐ पानी ढोते देखा तो उन्हें बड़ा अचम्भा हुआ। वे स्पष्ट शब्दों में कहने लगे कि '' **शिरडी परम भाग्यशालिनी है, जहाँ एक अमूल्य हीरा है।** जिन्हें तुम इस प्रकार परिश्रम करते हुए देख रहे हो, वे कोई सामान्य पुरुष नहीं हैं। अपितु यह भूमि बहुत भाग्यशालिनी तथा महान् पुण्यभूमि है, इसी कारण इसे यह रत्न प्राप्त हुआ है।'' इसी प्रकार श्री अक्कलकोट महाराज के एक प्रसिद्ध शिष्य संत आनन्द नाथ, (येवलामठ) जो कुछ शिरडी निवासियों के साथ शिरडी पधारे, उन्होंने भी स्पष्ट कहा कि ''**यद्यपि बाह्यदृष्टिसे ये साधारण व्यक्ति जैसे प्रतीत होते हैं, परंतु ये सचमुच असाधारण व्यक्ति हैं।** इसका तुम लोगों को भविष्य में अनुभव होगा।'' ऐसा कहकर वे येवला को लौट गये। यह उस समय की बात है, जब शिरडी बहुत ही साधारण-सा गाँव था और साई बाबा बहुत छोटी उम्र के थे।

बाबा का रहन-सहन व नित्य कार्यक्रम

तरुण अवस्था में श्री बाबा ने अपने केश कभी नहीं कटाये और वे सदैव एक पहलवान की तरह रहते थे। जब वे राहाता जाते (जो कि शिरडी से ३ मील दूर है) तो वहाँ से वे गेंदा, जाई और जुही के पौधे मोल ले आया करते थे। वे उन्हें स्वच्छ करके उत्तम भूमि देखकर लगा देते और स्वयं सींचते थे। वामन तात्या नाम के एक भक्त इन्हें नित्य प्रति दो मिट्टी के घड़े दिया करते थे। इन घड़ों द्वारा बाबा स्वयं ही पौधों में पानी डाला करते थे। वे स्वयं कुएँ से पानी खींचते और संध्या समय घड़ो को नीम वृक्ष के नीचे रख देते थे। जैसे ही घडे वहाँ रखते, वैसे ही वे फूट जाया करते थे, क्योंकि वे बिना तपाए और कच्ची मिट्टी के बने रहते थे। दूसरे दिन तात्या उन्हें फिर दो नए घड़े दे दिया करते थे। यह क्रम ३ वर्षो तक चला और श्री साई बाबा के कठोर परिश्रम तथा प्रयत्न से वहा फूलों की एक सुन्दर फुलवारी बन गई । आजकल इसी स्थान पर बाबा के समाधि-मंदिर की भव्य इमारत शोभायमान हैं, जहाँ सहस्त्रों भक्त आते-जाते रहते हैं।

नीम वृक्ष के नीचे पादुकाओं की कथा

श्री अक्कलकोट महाराज के एक भक्त,जिनका नाम भाई कृष्ण जी अलीबागकर था, उनके चित्र का नित्य-प्रति पूजन किया करते थे। एक समय उन्होंने अक्कलकोट (शोलापुर जिला) जाकर महाराज की पादुकाओं का दर्शन एवं पूजन करने का निश्चय किया। परन्तु प्रस्थान करने के पूर्व अक्कलकोट महाराज ने स्वप्न में दर्शन देकर उनसे कहा कि आजकल शिरडी ही मेरा विश्राम-स्थल है और तुम वहीं जाकर मेरा पूजन करो । इसलिऐ भाई ने अपने कार्यक्रम में परिवर्तन कर शिरडी आकर श्री साईबाबा की पूजा की। वे आनन्दपूर्वक शिरडी में छः मास रहे और इस स्वप्न की स्मृति-स्वरुप उन्होंने पादुकाएँ बनवाईं। शके सं.१८३४ में श्रावण में शुभ दिन देखकर नीम वृक्ष के नीचे वे पादुकाएँ स्थापित कर दी गईं। दादा केलकर तथा उपासनी महाराज ने उनका यथाविधि स्थापना-उत्सव सम्पन्न किया। एक दीक्षित ब्राह्मण पूजन के लिये नियुक्त कर दिया गया और प्रबन्ध का कार्य एक भक्त सगुण मेरु नायक को सौंपा गया।

कथा का पूर्ण विवरण

ठाणे के सेवानिवृत्त मामलतदार श्री.बी.व्ही. देव, जो श्री साईबाबा के एक परम भक्त थे, उन्होंने सगुण मेरु नायक और गोविंद कमलाकर दीक्षित से इस विषय में पूछताछ की। पादुकाओं का पूर्ण विवरण श्री साई लीला भाग ११,संख्या १, पृष्ठ २५ में प्रकाशित हुआ है, जो निम्नलिखित हैः- शक १८३४(सन् १९१२) में बम्बई के एक भक्त डॉ. रामराव कोठारे बाबा के दर्शनार्थ शिरडी आएँ। उनका कम्पाउंडर और उनके एक मित्र भाई कृष्ण जी अलीबागकर भी उनके साथ में थे। कम्पाउंडर और भाई की सगुण मेरु नायक तथा जी.के.दीक्षित से घनिष्ठ दोस्ती हो गई। अन्य विषयों पर विवाद करते समय इन लोगों को विचार आया कि श्री साई बाबा के शिरडी में प्रथम आगमन तथा पवित्र नीम वृक्ष के नीचे निवास करने की ऐतिहासिक स्मृति के उपलक्ष्य में क्यों न पादुकाएं स्थापित की जायें ? अब पादुकाओं के निर्माण पर विचार विमर्श होने लगा। तब भाई के मित्र कम्पाउंडर ने कहा कि यदि यह बात मेरे स्वामी कोठारे को विदित हो जाय तो वे इस कार्य के निमित्त अति सुन्दर पादुकायें बनवा देंगे। यह प्रस्ताव

सबको मान्य हुआ और डॉ. कोठारे को इसकी सूचना दी गई । उन्होंने शिरडी आकर पादुकाओं की रुपरेखा बनाई तथा इस विषय में उपासनी महाराज से भी खंडोबा के मंदिर में भेंट की। उपासनी महाराज ने उसमें बहुत से सुधार किए और कमल फुलादि खींच दिये तथा नीचे लिखा श्लोक भी रचा, जो नीम वृक्ष के माहात्म्य व बाबा की योगशक्ति का द्योतक था , जो इस प्रकार हैः-

सदा निंबवृक्षस्य मूलाधिवासात्
सुधास्त्रविणं तिक्तमप्यप्रियं तम्
तरूं कल्पवृक्षाधिकं साधयन्तं
नमामीश्वरं सद्‌गुरुं साईनाथम् ।।

अर्थात्- मैं भगवान साईनाथ को नमन करता हूँ, जिनका सान्निध्य पाकर नीम वृक्ष कटु तथा अप्रिय होते हुये भी अमृत वर्षा करता था । (इस वृक्ष का रस अमृत कहलाता है) इसमें अनेक व्याधियों सें मुक्ति देने के गुण होने के कारण इसे ' कल्पवृक्ष' से भी श्रेष्ठ कहा गया है ।

उपासनी महाराज का विचार सर्वमान्य हुआ और कार्य रुप में भी परिणत हुआ । पादुकाएँ बम्बई में तैयार कराई गईं और कम्पाउंडर के हाथ शिरडी भेज दी गई । बाबा की आज्ञानुसार इनकी स्थापना श्रावण की पूर्णिमा के दिन की गई । इस दिन प्रातःकाल ११ बजे जी.के.दीक्षित उन्हें अपने मस्तक पर धारण कर खंडोबा के मंदिर से बड़े समारोह और धूमधाम के साथ द्वारकामाई में लाए । बाबा ने पादुकाएँ स्पर्श कर कहा कि '' ये भगवान के श्री चरण हैं। इनकी नीम वृक्ष के नीचे स्थापना कर दो।'' इसके एक दिन पूर्व ही बम्बई के एक पारसी भक्त पास्ता शेट ने २५ रुपयों का मनीऑर्डर भेजा। बाबा ने ये रुपये पादुकाओं की स्थापना के निमित्त दे दिए। स्थापना में कुल १०० रुपये व्यय हुये, जिनमें ७५ रुपये चन्दे द्वारा एकत्रित हुए। प्रथम पाँच वर्षो तक डॉ. कोठारे दीपक के निमित्त २ रुपये मासिक भेजते रहे। उन्होंने पादुकाओं के चारों ओर लगाने के लिये लोहे की छड़ें भी भेजीं। स्टेशन से छड़ें ढोने और छप्पर बनाने का खर्च (७ रुपये ८ आने) सगुण मेरु नायक ने दिये। आजकल जरबाड़ी (नाना पुजारी) पूजन करते हैं और सगुण मेरु नायक नैवेद्य अर्पण करते तथा संध्या को दीपक जलाते हैं। भाई कृष्ण जी पहले अक्कलकोट महाराज के शिष्य थे। अक्कलकोट जाते हुए, वे शक १८३४ में पादुका स्थापन के शुभ अवसर पर शिरडी आए और दर्शन करने के पश्चात् जब उन्होंने बाबा से अक्कलकोट प्रस्थान करने की आज्ञा माँगी, तब बाबा कहने लगे,'' अरे। अक्कलकोट में क्या है? तुम वहाँ व्यर्थ क्यों जाते हो? वहाँ के महाराज तो यहीं (मैं स्वयं) हैं। '' यह सुनकर भाई ने अक्कलकोट जाने का विचार त्याग दिया। पादुकाएँ स्थापित होने के पश्चात् वे बहुधा शिरडी आया करते थे। श्री.बी.व्ही.देव ने अंत में ऐसा लिखा है कि इन सब बातों का विवरण हेमाडपंत को विदित नहीं था। अन्यथा वे श्री साई सच्चरित्र में लिखना कभी नहीं भूलते।

मोहिद्दीन तम्बोली के साथ कुश्ती और जीवन परिवर्तन

शिरडी में एक पहलवान था, जिसका नाम मोहिद्दीन तम्बोली था। बाबा का उससे किसी विषय पर मतभेद हो गया। फलस्वरुप दोनों में कुश्ती हुई और बाबा हार गये। इसके पश्चात् बाबा ने अपनी पोशाक और रहन-सहन में परिवर्तन कर दिया। वे कफनी पहनते, लंगोट बाँधते और एक कपड़े के टुकड़े से सिर ढँकते थे। वे आसन तथा शयन के लिए एक टाट का टुकड़ा काम में लाते थे। इस प्रकार फटे-पुराने चिथड़े पहिन कर वे बहुत सन्तुष्ट प्रतीत होते थे। वे सदैव यही कहा करते थे कि '' गरीबी अव्वल बादशाही, अमीरी से लाख सवाई, गरीबों का अल्ला भाई। '' गंगागीर को भी कुश्ती से बड़ा अनुराग था। एक समय जब वह कुश्ती लड़ रहा था, तब इसी प्रकार उसको भी त्याग की भावना जागृत हो गई। इसी उपयुक्त अवसर पर उसे देव वाणी सुनाई दी **''भगवान् के साथ खेल में अपना शरीर लगा देना चाहिए।''** इस कारण वह संसार छोड़ आत्म-अनुभूति की ओर झुक गया। पुणताम्बे के समीप एक मठ स्थापित कर वह अपने शिष्यों सहित वहाँ रहने लगा। श्री साई बाबा लोगों से न मिलते और न वार्त्तालाप करते थे। जब कोई उनसे कुछ प्रश्न करता तो वे केवल उतना ही उत्तर देते थे। दिन के समय वे नीम वृक्ष के नीचे विराजमान रहते थे। कभी-कभी वे गाँव की मेंड़ पर नाले के किनारे एक बबूल-वृक्ष की छाया में भी बैठे रहते थे और संध्या को अपनी इच्छानुसार कहीं भी वायु-सेवन को निकल जाया करते थे। नीमगाँव में वे बहुधा बालासाहेब डेंगले के गृह पर जाया करते थे। बाबा श्री बालासाहेब को बहुत प्यार करते थे। उनके छोटे भाई, जिसका नाम नानासाहेब था, के द्वितीय विवाह करने पर भी उनको कोई संतान न थी। बालासाहेब ने नानासाहेब को श्री साई बाबा के

दर्शनार्थ शिरडी भेजा। कुछ समय पश्चात् उनकी श्री कृपा से नानासाहेब के यहाँ एक पुत्ररन्त हुआ। इसी समय से बाबा के दर्शनार्थ लोगों का अधिक संख्या में आना प्रारंभ हो गया तथा उनकी कीर्त्ति भी दूरदूर तक फैलने लगी। अहमदनगर में भी उनकी अधिक प्रसिद्धि हो गई। तभी से नानासाहेब चांदोरकर, केशव चिदम्बर तथा अन्य कई भक्तों का शिरडी में आगमन होने लगा। बाबा दिनभर अपने भक्तों से घिरे रहते और रात्रि में जीर्ण-शीर्ण मस्जिद में शयन करते थे। इस समय बाबा के पास कुल सामग्री-चिलम, तम्बाखू, एक टमरेल, एक लम्बी कफनी, सिर के चारों ओर लपेटने का कपड़ा और एक सटका था, जिसे से सदा अपने पास रखते थे। सिर पर सफेद कपड़े का एक टुकड़ा वे सदा इस प्रकार बाँधते थे कि उसका एक छोर बाए कान पर से पीठ पर गिरता हुआ ऐसा प्रतीत होता था, मानो बालोंका जूड़ा हो। हफ्तो तक वे इन्हें स्वच्छ नहीं करते थे। पैर में कोई जूता या चप्पल भी नहीं पहनते थे। केवल एक टाट का टुकड़ा ही अधिकांश दिन में उनके आसन का काम देता था। वे एक कौपीन धारण करते और सर्दी से बचने के लिए दक्षिण मुख हो धूनी से तपते थे। वे धूनी में लकड़ी के टुकड़े डाला करते थे तथा अपना अहंकार, समस्त इच्छाएं और समस्त कुविचारों की उसमें आहुति दिया करते थे। वे '' अल्लाह मालिक'' का सदा जिव्हा से उच्चारण किया करते थे। जिस मस्जिद में वे पधारे थे, उसमें केवल दो कमरों के बराबर लम्बी जगह थी और यहीं सब भक्त उनके दर्शन करते थे। सन् १९१२ के पश्चात् कुछ परिवर्तन हुआ। पुरानी मस्जिद का जीर्णोद्धार हो गया और उसमें एक फर्श भी बनाया गया। मस्जिद में निवास करने के पूर्व बाबा दीर्घ काल तक तकिया में रहे। वे पैरों में घुँघरु बाँधकर प्रेमविव्हल होकर सुन्दर नृत्य व गायन भी करते थे।

जल का तेल में परिवर्तन

बाबा को प्रकाश से बड़ा अनुराग था। वे संध्या समय दूकानदारों से भिक्षा में तेल माँग लेते थे तथा दीपमालाओं से मस्जिद को सजाकर, रात्रिभर दीपक जलाया करते थे। यह क्रम कुछ दिनों तक ठीक इसी प्रकार चलता रहा। अब बनिये तंग आ गये और उन्होंने संगठित होकर निश्चय किया कि आज कोई उन्हें तेल की भिक्षा न दे। नित्य नियमानुसार जब बाबा तेल माँगने पहुँचे तो प्रत्येक स्थान पर उनका नकारात्मक उत्तर से स्वागत हुआ। किसी से कुछ कहे बिना बाबा मस्जिद को लौट आए और सूखी बत्तियाँ दियों में डाल दीं। बनिये तो बड़े उत्सुक होकर उनपर दृष्टि जमाए हुए थे। बाबा ने टमरेल उठाया, जिसमें बिलकुल थोड़ा सा तेल था। उन्होंने उसमें पानी मिलाया और वह तेल-मिश्रित जल वे पी गये। उन्होंने उसे पुनः टीनपाट में उगल दिया और वही तेलिया पानी दियों में डालकर उन्हें जल दिया। उत्सुक बनियों ने जब दीपकों को पूर्ववत् रात्रि भर जलते देखा, तब उन्हें अपने कृत्य पर बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने बाबा से क्षमा-याचना की। बाबा ने उन्हें क्षमा कर भविष्य में सत्य व्यवहार रखने के लिये सावधान किया।

मिथ्या गुरु जौहर अली

उपर्युक्त वर्णित कुश्ती के ५ वर्ष पश्चात् जौहर अली नाम के एक फकीर अपने शिष्यों के साथ राहाता आये। वे वीरभद्र मंदिर के समीप एक मकान में रहने लगे। फकीर विद्वान् था। कुरान की आयतें उसे कंठस्थ थी। उसका कंठ मधुर था। गाँव वे बहुत से धार्मिक और श्रद्धालु जन उसके पास आने लगे और उसका यथायोग्य आदर होने लगा। लोगों से आर्थिक सहायता प्राप्त कर, उसने वीरभद्र मंदिर के पास एक ईदगाह बनाने का निश्चय किया। इस विषय को लेकर कुछ झगड़ा हो गया, जिसके फलस्वरुप जौहर अली राहाता छोड़ शिरडी आया और बाबा के साथ मस्जिद में निवास करने लगा। उसने अपनी मधुर वाणी से लोगों के मन को जीत लिया। वह बाबा को भी अपना एक शिष्य बताने लगा। बाबा ने कोई आपत्ति नहीं की और उसका शिष्य होना स्वीकार कर लिया। तब गुरु और शिष्य दोनों पुनः राहाता में आकर रहने लगे। गुरु शिष्य की योग्यता से अनभिज्ञ था, परन्तु शिष्य गुरु के दोषों से पूर्ण परिचित था। इतने पर भी बाबा ने कभी उसका अनादर नहीं किया और पूर्ण लगन से अपना कर्तव्य निबाहते रहे और उसकी अनेक प्रकार से सेवा की। वे दोनों कभी-कभी शिरडी भी आया करते थे, परन्तु मुख्य निवास राहाता में ही था। श्री बाबा के प्रेमी भक्तों को उनका दूर राहाता में रहना अच्छा नहीं लगता था। इसलिए वे सब मिलकर बाबा को शिरडी वापस लाने के लिए गए। इन लोगों की ईदगाह के समीप बाबा से भेंट हुई और उन्हें अपने आगमन का हेतु बतलाया। बाबा ने उन लोगों को समझाया कि फकीर बड़े क्रोधी और दुष्ट स्वभाव के व्यक्ति हैं, वे मुझे नहीं छोड़ेंगे। अच्छा हो कि फकीर के आने के पूर्व ही आप लोग शिरडी लौट जायें। इस प्रकार वार्त्तालाप हो ही रहा था कि इतने में फकीर आ पहुँचे। इस प्रकार अपने शिष्य को वहाँ से ले जाने का कुप्रयत्न करते देखकर वे बहुत ही क्रोधित हुए। कुछ वादविवाद के पश्चात् स्थिति में परिवर्तन हो गया और अंत में यह निर्णय हुआ कि फकीर व शिष्य दोनों ही शिरडी में निवास करें और इसीलिए वे शिरडी में आकर रहने लगे। कुछ दिनों के बाद देवीदास ने गुरु की परीक्षा की और उसमें कुछ कमी पाई। चाँद पाटील की बारात के साथ जब बाबा शिरडी में आये थे, उससे १२ वर्ष

पूर्व देवीदास लगभग १० या ११ वर्ष की अवस्था में शिरडी आए थे और हनुमान मंदिर में रहते थे। देवीदास सुडौल, सुन्दर आकृति तथा तीक्ष्ण बुद्धि के थे। वे त्याग की साक्षात्मूर्ति तथा अगाध ज्ञानी थे। बहुत-से सज्जन जैसे तात्या कोते, काशीनाथ व अन्य लोग, उन्हें अपने गुरु-समान मानते थे। लोग जौहर अली को उनके सम्मुख लाए। विवाद में जौहर अली बुरी तरह पराजित हुआ और शिरडी छोड़ वैजापूर को भाग गया। वह अनेक वर्षों के पश्चात् शिरडी आया और श्री साईबाबा की चरण-वन्दना की। उसका यह भ्रम कि '' वह स्वयं गुरु था और श्री साईबाबा उसके शिष्य'' अब दूर हो चुका था। श्री साईबाबा उसे गुरु-समान ही आदर करते थे, उसका स्मरण कर उसे बहुत पश्चाताप हुआ। इस प्रकार श्री साईबाबा ने अपने प्रत्यक्ष आचरण से आदर्श उपस्थित किया कि अहंकार से किस प्रकार छुटकारा पाकर शिष्य के कर्तव्यों का पालन कर,किस तरह आत्मानुभव की ओर अग्रसर होना चाहिए। ऊपर वर्णित कथा म्हालसापति के कथनानुसार है। अगले अध्याय में रामनवमी का त्यौहार, मस्जिद की पहली हालत एवं पश्चात् उसके जर्णोद्धार इत्यादि का वर्णन होगा।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु ।शुभंभवतु ।।

रामनवमी उत्सव व मस्जिद का जीर्णोद्धार, गुरु के कर-स्पर्श की महिमा, चंदन समारोह,उर्स और रामनवमी का समन्वय, मस्जिद का जीर्णोद्धार ।

गुरु के कर-स्पर्श के गुण

जब सद्‌गुरु ही नाव के खिवैया हैं तो वे निश्चय ही कुशलता तथा सरलतापूर्वक इस भवसागर के पार उतार देंगे। 'सद्‌गुरु' शब्द का उच्चारण करते ही मुझे श्री साई की स्मृति आ रही है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो वे स्वयं मेरे सामने ही खड़े हैं और मेरे मस्तक पर उदी लगा रहे हैं। देखो, देखो, वे अब अपना वरद् हस्त उठाकर मेरे मस्तक पर रख रहे हैं। अब मेरा हृदय आनन्द से भर गया है। मेरे नेत्रों से प्रेमाश्रु बह रहे हैं। सद्‌गुरु के कर-स्पर्श की शक्ति महान् आश्चर्यजनक है। लिंग(सूक्ष्म) शरीर, जो संसार को भस्म करने वाली अग्नि से भी नष्ट नहीं होता है, वह केवल गुरु के कर-स्पर्श से ही पल भर में नष्ट हो जाता है। अनेक जन्मों के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति, जिन्हें धार्मिक और ईश्वरीय प्रसंगों में पूर्ण अरुचि है, उनके भी मन स्थिर हो जाते हैं। श्री साईबाबा के मनोहर रुप के दर्शन कर कंठ प्रफुल्लता से रुँध जाता है, आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है और जब हृदय भावनाओं से भर जाता है, तब सोऽहं भाव की जागृति होकर आत्मानुभव के आनन्द का आभास होने लगता है। मैं और तू का भेद (द्वैतभाव) नष्ट हो जाता है और तत्क्षण ही ब्रह्म के साथ अभिन्नता प्राप्त हो जाती है। जब मैं धार्मिक ग्रन्थों का पठन करता हूँ तो क्षण-क्षण में सद्‌गुरु की स्मृति हो आती है। बाबा राम या कृष्ण का रुप धारण कर मेरे सामने खड़े हो जाते हैं और स्वयं अपनी जीवन-कथा मुझे सुनाने लगते हैं। अर्थात् जब मैं भागवत का श्रवण करता हूँ, तब बाबा श्री कृष्ण का स्वरुप धारण कर लेते हैं और तब मुझे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि वे ही भागवत या भक्तों के कल्याणार्थ उद्धवगीता सुना रहे हैं। जब कभी भी मैं किसी से वार्त्तालाप किया करता हूँ तो मैं बाबा की कथाओं को ध्यान में लाता हूँ, जिससे उनका उपयुक्त अर्थ समझाने में सफल हो सकूँ। जब मैं लिखने के लिए बैठता हूँ, तब एक शब्द या वाक्य की रचना भी नहीं कर पाता हूँ, परन्तु जब वे स्वयं कृपा कर मुझसे लिखवाने लगते हैं, तब फिर उसका कोई अंत नहीं होता। जब भक्तों में अहंकार की वृद्धि होने लगती है तो वे शक्ति प्रदान कर उसे अहंकारशून्य बनाकर अंतिम ध्येय की प्राप्ति करा देते हैं तथा उसे संतुष्ट कर अक्षय सुख का अधिकारी बना देते हैं। **जो बाबा को नमन कर अनन्य भाव से उनकी शरण जाता है, उसे फिर कोई साधना करने की आवश्यकता नहीं है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष उसे सहज ही में प्राप्त हो जाते हैं।** १ ईश्वर के पास पहुँचने के चार मार्ग हैं - कर्म, ज्ञान, योग और भक्ति। इन सबमें भक्तिमार्ग अधिक कंटकाकीर्ण, गड्ढों और खाइयों से परिपूर्ण है। परन्तु यदि सद्‌गुरु पर विश्वास कर गड्ढों और खाइयों से बचते और पदानुक्रमण करते हुए सीधे अग्रसर होते जाओगे तो तुम अपने ध्येय अर्थात् ईश्वर के समीप आसानी से पहुँच जाओगे। श्री साईबाबा ने निश्चयात्मक स्वर में कहा है कि स्वयं ब्रह्म और उनकी विश्व उत्पत्ति, रक्षण और लय करने आदि की भिन्न-भिन्न शक्तियों के पृथकत्व में भी एकत्व है। इसे ही ग्रन्थकारों ने दर्शाया है। भक्तों के कल्याणार्थ श्री साईबाबा ने स्वयं जिन वचनों से आश्वासन दिया था, उनको नीचे उद्धृत किया जाता है-

'' मेरे भक्तों के घर अन्न तथा वस्त्रों का कभी अभाव नहीं होगा। यह मेरा वैशिष्ट्य है कि जो भक्त मेरी शरण आ जाते हैं और अंतःकरण से मेरे उपासक हैं, उनके कल्याणार्थ मैं सदैव चिंतित रहता हूँ। २

१.-२ सर्वधर्मान्परित्यज्यं मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। - गीता १८/६६

कृष्ण भगवान ने भी गीता में यही समझाया है। इसलिये भोजन तथा वस्त्र के लिए अधिक चिंता न करो। यदि कुछ माँगने की ही अभिलाषा है तो ईश्वर को ही भिक्षा में माँगो। सांसारिक मान व उपाधियाँ त्यागकर ईश-कृपा

तथा अभयदान प्राप्त करो और उन्हीं के द्वारा सम्मानित होओ। सांसारिक साधनों से कुपथगामी मत बनो। अपने इष्ट को दृढ़ता से पकड़े रहो। समस्त इन्द्रियों और मन को ईश्वरचिंतन में प्रवृत्त रखो। किसी पदार्थ से आकर्षित न हो, सदैव मेरे स्मरण में मन को लगाए रखो, ताकि वह देह, सम्पत्ति व ऐश्वर्य की ओर प्रवृत्त न हो। तब चित्त स्थिर, शांत व निर्भय हो जाएगा। इस प्रकार की मनःस्थिति प्राप्त होना इस बात का प्रतीक है कि वह सुसंगति में है। यदि चित्त की चंचलता नष्ट न हुई तो उसे एकाग्र नहीं किया जा सकता।''

बाबा के उपर्युक्त शब्दों को उद्धृत कर ग्रंन्थकार शिरडी के रामनवमी उत्सव का वर्णन करता है। शिरड़ी में मनाये जाने वाले उत्सवों में रामनवमी अधिक धूमधाम से मनायी जाती है। अतएव इस उत्सव का पूर्ण विवरण जैसा कि साईलीला-पत्रिका (१९२५) के पृष्ट १९७ पर प्रकाशित हुआ था, यहाँ संक्षेप में दिया जाता है-

प्रारम्भ

कोपरगाँव में श्री गोपालराव गुंड नाम के एक इन्सपेक्टर थे। वे बाबा के परम भक्त थे। उनकी तीन स्त्रियाँ थीं, परन्तु एक के भी संतान न थीं। श्री साईबाबा की कृपा से उन्हें एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। इस हर्ष के उपलक्ष्य में सन् १८९७ में उन्हें विचार आया कि शिरडी में मेला अथवा उर्स भरवाना चाहिए। उन्होंने यह विचार शिरडी के अन्य भक्त-तात्या पाटील, दादा कोते पाटील और माधवराव के समक्ष विचारणार्थ प्रगट किया। उन सभी को यह विचार अति रुचिकर प्रतीत हुआ तथा उन्हें बाबा की भी स्वीकृति और आश्वासन प्राप्त हो गया। उर्स भरने के लिये सरकारी आज्ञा आवश्यक थी। इसलिए एक प्रार्थना-पत्र कलेक्टर के पास भेजा गया, परन्तु ग्राम कुलकर्णी (पटवारी) के आपत्ति उठाने के कारण स्वीकृति प्राप्त न हो सकी। परन्तु बाबा का आश्वासन तो प्राप्त हो ही चुका था, अतः पुनः प्रयत्न करने पर स्वीकृति प्राप्त हो गई। बाबा की अनुमति से रामनवमी के दिन उर्स भरना निश्चित हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ निष्कर्ष ध्यान में रख कर ही उन्होंने ऐसी आज्ञा दी। अर्थात् उर्स व रामनवमी के उत्सवों का एकीकरण तथा हिन्दु-मुस्लिम एकता, जो भविष्य घटनाओं से ही स्पष्ट है कि यह ध्येय पूर्ण सफल हुआ। प्रथम बाधा तो किसी प्रकार हल हुई। अब द्वितीय कठिनाई जल के अभाव की उपस्थित हुई। शिरडी तो एक छोटा सग्राम था और पूर्व काल से ही वहाँ जल का अभाव बना रहता था। गाँव में केवल दो कुएँ थे, जिनमें से एक तो प्रायः सूख जाया करता था और दूसरे का पानी खारा था। बाबा ने उसमें फूल डालकर उसके खारे जल को मीठा बना दिया। लेकिन एक कुएँ का जल कितने लोगों को पर्याप्त हो सकता था? इसलिये तात्या पाटील ने बाहर से जल मँगवाने का प्रबन्ध किया। लकड़ी व बाँसों की कच्ची दूकानें बनाई गईं तथा कुश्तियों का भी आयोजन किया गया। गोपालराव गुंड के एक मित्र दामू-अण्णा कासार अहमदनगर में रहते थे। वे भी संतानहीन होने के कारण दुःखी थे। श्री साईबाबा की कृपा से उन्हें भी एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई थी। श्री गुंड ने उनसे एक ध्वज देने को कहा। एक ध्वज जागीरदार श्री. नानासाहेब निमोणकर ने भी दिया। ये दोनों ध्वज बड़े समारोह के साथ गाँव में से निकाले गए और अंत में उन्हें मस्जिद, जिसे बाबा 'द्वारकामाई ' के नाम से पुकारते थे, उसके कोनों पर फहरा दिया गया। यह कार्यक्रम अभी भी पूर्ववत् ही चल रहा है।

चन्दन समारोह

इस मेले में एक अन्य कार्यक्रम का भी श्री गणेश हुआ, जो चन्दनोत्सव के नाम से प्रसिद्ध है। यह कोरहल के एक मुस्लिम भक्त श्री. अमीर शक्कर दलाल के मस्तिष्क की सूझ थी। प्रायः इस प्रकार का उत्सव सिद्ध मुस्लिम भक्त सन्तों के सम्मान में ही किया जाता है। बहुत-सा चन्दन घिसकर और बहुत सी चंन्दन-धूप थालियों में भरी जाती है तथा लोबान जलाते हैं और अंत में उन्हें मस्जिद में पहुँचा कर जुलूस समाप्त हो जाता है। थालियों का चन्दन और धूप नीम पर और मस्जिद की दीवारों पर डाल दिया जाता है। इस उत्सव का प्रबन्ध प्रथम तीन वर्षो तक श्री. अमीर शक्कर ने किया और उनके पश्चात् उनकी धर्मपत्नी ने किया। इस प्रकार हिन्दुओं द्वारा ध्वज व मुसलमानों के द्वारा चन्दन का जुलूस एक साथ चलने लगा और अभी तक उसी तरह चल रहा है।

प्रबन्ध

रामनवमी का दिन श्री साईबाबा के भक्तों को अत्यन्त ही प्रिय और पवित्र है। कार्य करने के लिए बहुत से स्वयंसेवक तैयार हो जाते थे और वे मेले के प्रबन्ध में सक्रिय भाग लेते थे। बाहर के समस्त कार्यो का भार तात्या पाटील और भीतर के कार्यो को श्री साईबाबा की एक परम भक्त महिला राधाकृष्ण माई संभालती थीं । इस अवसर पर उनका निवासस्थान अतिथियों से परिपूर्ण रहता और उन्हें सब लोगों की आवश्यकताओं का भी ध्यान रखना

पड़ता था। साथ ही वे मेले की समस्त आवश्यक वस्तुओं का भी प्रबन्ध करती थीं। दूसरा कार्य जो वे स्वयं खुशी से किया करतीं, वह था मस्जिद की सफाई करना, चूना पोतना आदि। मस्जिद की फर्श तथा दीवारें निरन्तर धूनी जलने के कारण काली पड़ गयी थी। जब रात्रि को बाबा चावड़ी में विश्राम करने चले जाते, तब वे यह कार्य कर लिया करती थीं। समस्त वस्तुएँ धूनी सहित बाहर निकालनी पड़ती थीं और सफाई व पुताई हो जाने के पश्चात् वे पूर्ववत् सजा दी जाती थीं। बाबा का अत्यन्त प्रिय कार्य गरीबों को भोजन कराना भी इस कार्यक्रम का एक अंग था। इस कार्य के लिए वृहद् भोज का आयोजन किया जाता था और अनेक प्रकार की मिठाइयाँ बनाई जाती थीं। यह सब कार्य राधाकृष्णमाई के निवासस्थान पर ही होता था। बहुत से धनाढ्य व श्रीमंत भक्त इस कार्य में आर्थिक सहायता पहुँचाते थे।

उर्स का रामनवमी के त्यौहार में समन्वय

सब कार्यक्रम इसी तरह उत्तम प्रकार से चलता रहा और मेले का महत्त्व शनैःशनैःबढ़ता ही गया। सन् १९११ में एक परिवर्तन हुआ। एक भक्त कृष्णराव जोगेश्वर भीष्म (श्री साई सगुणोपासना के लेखक) अमरावती के दादासाहेब खापर्डे के साथ मेले के एक दिन पूर्व शिरडी के दिक्षित-वाड़े में ठहरे। जब वे दालान में लेटे हुए विश्राम कर रहे थे, तब उन्हें एक कल्पना सूझी। इसी समय श्री. लक्ष्मणराव उपनाम काका महाजनी पूजन सामग्री लेकर मस्जिद की ओर जा रहे थे। उन दोनों में विचार-विनिमय होने लगा और उन्होंने सोचा कि शिरडी में उर्स व मेला ठीक रामनवमी के दिन ही भरता है, इसमें अवश्य ही कोई गूढ़ रहस्य निहित है। रामनवमी का दिन हिन्दुओं को बहुत ही प्रिय है। कितना अच्छा हो, यदि रामनवमी उत्सव (अर्थात् श्री राम का जन्म दिवस) का भी श्री गणेश कर दिया जाय? काका महाजनी को यह विचार रुचिकर प्रतीत हुआ। अब मुख्य कठिनाई हरिदास के मिलने की थी, जो इस शुभ अवसर पर कीर्तन व ईश्वर-गुणानुवाद कर सकें। परन्तु भीष्म ने इस समस्या को हल कर दिया। उन्होंने कहा कि मेरा स्वरचित 'राम आख्यान', जिसमें रामजन्म का वर्णन है, तैयार हो चुका है। मैं उसका ही कीर्तन करुँगा और तुम हारमोनियम पर साथ करना तथा राधाकृष्णमाई सुंठवड़ा(सोंठ का शक्कर मिश्रित चूर्ण) तैयार कर देंगी। तब वे दोनों शीघ्र ही बाबा की स्वीकृति प्राप्त करने हेतु मस्जिद को गए। बाबा तो अंतर्यामी थे। उन्हें तो सब ज्ञान था कि वाड़े में क्या-क्या हो रहा है। बाबा ने महाजनी से प्रश्न किया कि '' वहाँ क्या चल रहा था?'' इस आकस्मिक प्रश्न से महाजनी घबड़ा गए और बाबा के शब्दों का अभिप्राय न समझ सकने के कारण वे स्तब्ध होकर खड़े रह गए। तब बाबा ने भीष्म से पूछा कि '' क्या बात है?'' भीष्म ने रामनवमी-उत्सव मनाने का विचार बाबा के समक्ष प्रस्तुत किया तथा स्वीकृति देने की प्रार्थना की। बाबा ने भी सहर्ष अनुमति दे दी । सभी भक्त हर्षित हुए और रामजन्मोत्सव मनाने की तैयारियाँ करने लगे। दूसरे दिन रंग-बिरंगी झंडियों से मस्जिद सजा दी गई। श्रीमती राधाकृष्णमाई ने एक पालना लाकर बाबा के आसन के समक्ष रख दिया और फिर उत्सव प्रारम्भ हो गया। भीष्म कीर्तन करने को खड़े हो गए और महाजनी हारमोनियम पर उनका साथ करने लगे। तभी बाबा ने महाजनी को बुलावा भेजा। यहाँ महाजनी शंकित थे कि बाबा उत्सव मनाने की आज्ञा देंगे भी या नहीं। परन्तु जब वे बाबा के समीप पहुँचे तो बाबा ने उनसे प्रश्न किया ''यह सब क्या है, यह पालना क्यों रखा गया है?'' महाजनी ने बतलाया कि रामनवमी का कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया है और इसी कारण यह पालना यहाँ रखा गया है। बाबा ने निम्बर पर से दो हार उठाए। उनमें से एक हार तो उन्होंने काकाजी के गले में डाल दिया तथा दूसरा भीष्म के लिये भेज दिया। अब कीर्तन प्रारम्भ हो गया था। कीर्तन समाप्त हुआ, तब 'श्री राजाराम' की उच्च स्वर से जयजयकार हुई। कीर्तन के स्थान पर गुलाल की वर्षा की गई। जब हर कोई प्रसन्नता से झूम रहा था, तब अचानक ही एक गर्जती हुई ध्वनि उनके कानों पर पड़ी। वस्तुतः जिस समय गुलाल की वर्षा हो रही थी तो उसमें के कुछ कण अनायास ही बाबा की आँख में चले गये। तब बाबा एकदम क्रुद्ध होकर उच्च स्वर में अपशब्द कहने व कोसने लगे। यह दृश्य देखकर सब लोग भयभीत होकर सिटपिटाने लगे। बाबा के स्वभाव से भली भाँति परिचित अंतरंग भक्त भला इन अपशब्दों का कब बुरा माननेवाले थे? बाबा के इन शब्दों तथा वाक्यों को उन्होंने आशीर्वाद समझा। उन्होंने सोचा कि आज राम का जन्मदिन है, अतःरावण का नाश, अहंकार एवं दुष्ट प्रवृत्तिरुपी राक्षसों के संहार के लिए बाबा को क्रोध उत्पन्न होना सर्वथा उचित ही है। इसके साथ-साथ उन्हें यह विदित था कि जब कभी भी शिरडी में कोई नवीन कार्यक्रम रचा जाता था, तब बाबा इसी प्रकार कुपित या क्रुद्ध हो ही जाया करते थे। इसलिए वे सब स्तब्ध ही रहे। इधर राधाकृष्णमाई भी भयभीत थीं कि कहीं बाबा पालना न तोड़-फोड़ डालें; इसलिए उन्होंने काका महाजनी से पालना हटाने के लिए कहा। परन्तु बाबा ने ऐसा करने से उन्हें रोका। कुछ समय पश्चात् बाबा शांत हो गए और उस दिन की महापूजा और आरती का कार्यक्रम निर्विन्घ समाप्त हो गया। उसके बाद काका महाजनी ने बाबा से पालना उतारने की अनुमति माँगी। परन्तु बाबा ने अस्वीकृत करते हुए कहा कि अभी उत्सव सम्पूर्ण नहीं हुआ है। अगले दिन गोपाल काला उत्सव मनाया गया, जिसके पश्चात् बाबा ने पालना उतारने की आज्ञा दे दी। उत्सव में दही

मिश्रित पौहा एक मिट्टी के बर्तन में लटका दिया जाता है और कीर्तन समाप्त होने पर वह बर्तन फोड़ दिया जाता है, और प्रसाद के रुप में वह पौहा सब को वितरित कर दिया जाता है, जिस प्रकार कि श्रीकृष्ण ने ग्वालों के साथ किया था। रामनवमी उत्सव इसी तरह दिन भर चलता रहा। दिन के समय दो ध्वजों का जुलूस और रात्रि के समय चन्दन का जुलूस बड़ी धूमधाम और समारोह के साथ निकाला गया। इस समय के पश्चात् ही उर्स रामनवमी के उत्सव में परिवर्तित हो गया। अगले वर्ष (सन् १९१२) से रामनवमी के कार्यक्रमों की सूची में वृद्धि होने लगी। श्रीमती राधाकृष्णमाई ने चैत्र की प्रतिपदा से नामसप्ताह प्रारम्भ कर दिया। (लगातार दिन रात ७ दिन तक भगवत् नाम लेना 'नामसप्ताह' कहलाता है।) सब भक्त इसमें बारी-बारी से भाग लेते थे। वे भी प्रातःकाल सम्मिलित हो जाया करती थीं। देश के सभी भागों में रामनवमी का उत्सव मनाया जाता है। इसलिए अगले वर्ष हरिदास के मिलने की कठिनाई पुनः उपस्थित हुई, परन्तु उत्सव के पूर्व ही यह समस्या हल हो गई। पाँच-छःदिन पूर्व श्री.महाजनी की बाला बुवा से अकस्मात् भेंट हो गई। बुवासाहेब 'आधुनिक तुकाराम' के नाम से प्रसिद्ध थे और इस वर्ष कीर्तन का कार्य उन्हें ही सौंपा गया। अगले वर्ष सन् १९१३ में श्री हरिदास (सातारा जिले के बाला बुवा सातारकर) बृहद्सिद्ध कवटे ग्राम में प्लेग का प्रकोप होने के कारण अपने गाँव में हरिदास का कार्य नहीं कर सकते थे। इस वर्ष वे शिरडी में आये। काकासाहेब दीक्षित ने उनके कीर्तन के लिए बाबा से अनुमति प्राप्त की। बाबा ने भी उन्हें यथेष्ट पुरस्कार दिया। सन् १९१४ से हरिदास की कठिनाई बाबा ने सदैव के लिए हल कर दी। उन्होंने यह कार्य स्थायी रुप से दासगणू महाराज को सौंप दिया। तब से वे इस कार्य को उत्तम रीति से सफलता और विद्वत्तापूर्वक पूर्ण लगन से निभाते रहे। सन् १९१२ से उत्सव के अवसर पर लोगों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। चैत्र शुक्ल अष्टमी से द्वादशी तक शिरडी में लोगों की संख्या में इतनी अधिक वृद्धि हो जाया करती थी, मानो मधुमक्खी का छत्ता ही लगा हो। दुकानों की संख्या में बढ़ती हो गई। प्रसिद्ध पहलवानों की कुश्तियाँ होने लगीं। गरीबो को वृहद् स्तरपर भोजन कराया जाने लगा। राधाकृष्णमाई के घोर परिश्रम के फलस्वरुप शिरडी को संस्थान का रुप मिला। सम्पत्ति भी दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। एक सुन्दर घोड़ा, पालकी, रथ और चाँदी के अन्य पदार्थ, बर्तन, पात्र, शीशे इत्यादि भक्तों ने उपहार में भेंट किए। उत्सव के अवसर पर हाथी भी बुलाया जाता था। यद्यपि सम्पति बहुत बढ़ी, परन्तु बाबा उन सब से सदा निरपेक्ष ही रहते थे। वे सदैव उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते और सदैव की भाँति ही साधारण वेशभूषा धारण करते थे। यह ध्यान देने योग्य है कि जूलूस तथा उत्सव में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही साथ-साथ कार्य करते थे। परन्तु आज तक न उनमें कोई विवाद हुआ और न कोई मतभेद ही। पहलेपहल तो लोगों की संख्या ५०००-७००० के लगभग ही होती थी। परन्तु किसी-किसी वर्ष तो यह संख्या ७५००० तक पहुँच जाती थी। फिर भी न कभी कोई बीमारी फैली और न कोई दंगा ही हुआ।

मस्जिद का जीर्णोद्धार

जिस प्रकार उर्स या मेला भराने का विचार प्रथमतः श्री. गोपाल गुंड को आया था, उसी प्रकार मस्जिद के जिर्णोद्धार का विचार भी प्रथमतः उन्हें ही आया। उन्होंने इस कार्य के निमित्त पत्थर एकत्रित कर उन्हें वर्गाकार करवाया। परन्तु इस कार्य का श्रेय उन्हें प्राप्त नहीं होना था। वह सुयश तो नानासाहेब चाँदोरकर के लिए ही सुरक्षित था और फर्श का कार्य काकासाहेब दीक्षित के लिए। प्रारम्भ में बाबा ने इन कार्यो के लिए स्वीकृति नहीं दी, परन्तु स्थानीय भक्त म्हालसापति के आग्रह करने से बाबा की स्वीकृति प्राप्त हो गई और एक रात में ही मस्जिद का पूरा फर्श बन गया। अभी तक बाबा एक टाट के ही टुकड़े पर बैठते थे। अब उस टाट के टुकड़े को वहाँ से हटाकर, उसके स्थान पर एक छोटी सी गादी बिछा दी गई। सन् १९११ में सभामंडप भी घोर परिश्रम के उपरांत ठीक हो गया। मस्जिद का आँगन बहुत छोटा तथा असुविधाजनक था। काकासाहेब दीक्षित आँगन को बढ़ाकर उसके ऊपर छप्पर बनाना चाहते थे। यथेष्ठ द्रव्यराशि व्यय कर उन्होंने लोहे के खम्भे, बल्लियाँ व कैंचियाँ मोल लीं और कार्य भी प्रारम्भ हो गया। दिन-रात परिश्रम कर भक्तों ने लोहे के खम्भे जमीन में गाड़े। जब दूसरे दिन बाबा चावड़ी से लौटे, उन्होंने उन खंम्भों को उखाड़ कर फेंक दिया और अति क्रोधित हो गए। वे एक हाथ से खम्भा पकड़ कर उसे उखाड़ने लगे और दूसरे हाथ से उन्होंने तात्या का साफा उतार लिया और उसमें आग लगाकर गड्ढे में फेंक दिया। बाबा के नेत्र जलते हुए अंगारे के सदृश लाल हो गए। किसी को भी उनकी ओर आँख उठा कर देखने का साहस नहीं होता था। सभी बुरी तरह भयभीत होकर विचलित होने लगे कि अब क्या होगा? भागोजी शिंदे (बाबा के एक कोढ़ी भक्त) कुछ साहस कर आगे बढ़े, पर बाबा ने उन्हें धक्का देकर पीछे ढकेल दिया। माधवराव की भी वही गति हुई। बाबा उनके ऊपर भी ईंट के ढेले फेंकने लगे। जो भी उन्हें शान्त करने गया, उसकी वही दशा हुई।

कुछ समय के पश्चात् क्रोध शांत होने पर बाबा ने एक दुकानदार को बुलाया और एक जरीदार फेंटा खरीद कर अपने हाथों से उसे तात्या के सिर पर बाँधने लगे, जैसे उन्हें विशेष सम्मान दिया गया हो। यह विचित्र व्यवहार

देखकर भक्तों को आश्चर्य हुआ। वे समझ नहीं पा रहे थे कि किस अज्ञात कारण से बाबा इतने क्रोधित हुए। उन्होंने तात्या को क्यों पीटा और तत्क्षण ही उनका क्रोध क्यों शांत हो गया? बाबा कभी-कभी अति गंभीर तथा शांत मुद्रा में रहते थे और बड़े प्रेमपूर्वक वार्त्तालाप किया करते थे। परन्तु अनायास ही बिना किसी गोचर कारण के वे क्रोधित हो जाया करते थे। ऐसी अनेक घटनाएँ देखने में आ चुकी हैं, परन्तु मैं इसका निर्णय नहीं कर सकता कि उनमें से कौन सी लिखूँ और कौन सी छोड़ूँ। अतः जिस क्रम से वे याद आती जाएंगी, उसी प्रकार उनका वर्णन किया जायगा। अगले अध्याय में बाबा यवन हैं या हिन्दू, इसका विवेचन किया जायेगा तथा उनके योग, साधन, शक्ति और अन्य विषयों पर भी विचार किया जाएगा।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।।

सप्ताह पारायणः प्रथम विश्राम

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ७ ।।

श्री साईबाबा की प्रकृति, उनकी यौगिक क्रियाएँ, उनकी सर्वव्यापकता, कुष्ठ रोगी की सेवा, खापर्डे के पुत्र को प्लेग, पंढरपुर गमन, अद्भुत अवतार।

श्री साईबाबा समस्त यौगिक क्रियाओं में पारंगत थे। छः प्रकार की क्रियाओं के तो वे पूर्ण ज्ञाता थे। छः क्रियाए, जिनमें धौति (एक ३''चौड़े व २२ १/२'' लम्बे कपड़े के भींगे हुए टुकड़े से पेट को स्वच्छ करना), खण्ड योग (अर्थात् अपने शरीर के अवयवों को पृथक्-पृथक् कर उन्हें पुनः पूर्ववत् जोड़ना) और समाधि आदि भी सम्मिलित हैं। यदि कहा जाए कि वे हिन्दू थे तो आकृति से वे यवन-से प्रतीत होते थे। कोई भी यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता था कि वे हिन्दू थे या यवन। वे हिन्दुओं का रामनवमी उत्सव यथाविधि मनाते थे और साथ ही मुसलमानों का चन्दनोत्सव भी। वे उत्सव में दंगलों को प्रोत्साहन तथा विजेताओं को पर्याप्त पुरस्कार देते थे। गोकुल अष्टमी को वे 'गोपाल-काला' उत्सव भी बड़ी धूमधाम से मनाते थे। ईद के दिन वे मुसलमानों को मस्जिद में नमाज पढ़ने के लिए आमंत्रित किया करते थे। एक समय मुहर्रम के अवसर पर मुसलमानों ने मस्जिद में ताजिए बनाने तथा कुछ दिन वहाँ रखकर फिर जुलूस बनाकर गाँव से निकालने का कार्यक्रम रचा। श्री साईबाबा ने केवल चार दिन ताजियों को वहाँ रखने दिया और बिना किसी राग-द्वेष के पाँचवें दिन वहाँ से हटवा दिया।

यदि कहें कि वे यवन थे तो उनके कान (हिन्दुओं की रीति के अनुसार) छिदे हुए थे और यदि कहें कि वे हिन्दू थे तो वे सुन्ता कराने के पक्ष में थे। (नानासाहेब चाँदोरकर, जिन्होंने उनको बहुत समीप से देखा था, उन्होंने बतलाया कि उनकी सुन्नत नहीं हुई थी। साईलीला-पत्रिका श्री.बी.व्ही.देव द्वारा लिखित शीर्षक '' बाबा यवन कीं हिन्दू'' पृष्ठ ५६२ देखो ।) यदि कोई उन्हें हिन्दू घोषित करें तो वे सदा मस्जिद में निवास करते थे और यदि यवन कहें तो वे सदा वहाँ धूनी प्रज्वलित रखते थे तथा अन्य कर्म, जो कि इस्लाम धर्म के विरुद्ध हैं, जैसे-चक्की पीसना, शंख तथा घंटानाद, होम आदि कर्म करना, अन्नदान और अर्घ्य द्वारा पूजन आदि सदैव वहाँ चलते रहते थे।

यदि कोई कहे कि वे यवन थे तो कुलीन ब्राह्मण और अग्निहोत्री भी अपने नियमों का उल्लंघन कर सदा उनको साष्टांग नमस्कार किया करते थे। जो उनके स्वदेश का पता लगाने गए, उन्हें अपना प्रश्न ही विस्मृत हो गया और वे उनके दर्शनमात्र से मोहित हो गये । अस्तु इसका निर्णय कोई न कर सका कि यथार्थ में साईबाबा हिन्दू थे या यवन। इसमें आश्चर्य ही क्या है? जो अहं व इन्द्रियजन्य सुखों को तिलांजलि देकर ईश्वर की शरण में आ जाता है तथा जब उसे ईश्वर के साथ अभिन्नता प्राप्त हो जाती है, तब उसकी कोई जाति-पाँति नहीं रह जाती । इसी कोटि में श्री साईबाबा थे। वे जातियों और प्राणियों में किंचित् मात्र भी भेदभाव नहीं रखते थे। फकीरों के साथ वे आमिष और मछली को सेवन भी कर लेते थे। कुत्ते भी उनके भोजन-पात्र में मुँह डालकर स्वतंत्रतापूर्वक खाते थे, परन्तु उन्होंने कभी कोई भी आपत्ति नहीं की। ऐसा अपूर्व और अद्भुत श्रीसाईबाबा का अवतार था।

गत जन्मों के शुभ संस्कारों के परिणामस्वरुप मुझे भी उनके श्री चरणों के समीप बैठने और उनका सत्संग-लाभ उठाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुझे जिस आनन्द व सुख का अनुभव हुआ, उसका वर्णन मैं किस प्रकार कर सकता हूँ? यथार्थ में बाबा अखण्ड सच्चिदानन्द थे। उनकी महानता और अद्वितीयता का बखान कौन कर सकता है? जिसने उनके श्रीचरण-कमलोंकी शरण ली, उसे साक्षात्कार की प्राप्ति हुई। अनेक संन्यासी, साधक और अन्य मुमुक्षु जन भी श्रीसाईबाबा के पास आया करते थे। बाबा भी सदैव उनके साथ चलते-फिरते, उठते-बैठते, उनसे वार्त्तालाप कर उनका चित्तरंजन किया करते थे। 'अल्लाह मालिक' सदैव उनके होठों पर था। वे कभी भी विवाद और मतभेद में नहीं पडते थे तथा सदा शान्त और स्थिर रहते थे। परन्तु कभी-कभी वे क्रोधित हो जाया करते थे। वे सदैव ही वेदान्त की शिक्षा दिया करते थे। कोई भी अन्त तक न जान सका कि श्री साईबाबा वास्तव में कौन थे? अमीर और गरीब दोनों उनके लिए एक समान थे। वे लोगों के गुह्य व्यापार को पूर्णतया जानते थे और जब वे गह्य रहस्य

स्पष्ट करते तो सब विस्मित हो जाते थे। स्वयं ज्ञानावतार होकर भी वे सदैव अज्ञानता का प्रदर्शन किया करते थे। उन्हें आदरसत्कार से सदैव अरुचि थी। इस प्रकार का श्री साईबाबा का वैशिष्ट्य था। थे तो वे शरीरधारी, परन्तु कर्मों से उनकी ईश्वरीयता स्पष्ट झलकती थी। शिरडी के सकल नर-नारी उन्हें परब्रह्म ही मानते थे।

विशेष :

(१) श्री साईबाबा के एक अंतरंग भक्त म्हालसापति, जो कि बाबा के साथ मस्जिद् तथा चावड़ी में शयन करते थे, उन्हें बाबा ने बतलाया था कि '' **मेरा जन्म पाथर्डी के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। मेरे माता-पिता ने मुझे बाल्यावस्था में ही एक फकीर को सौंप दिया था।**'' जब यह चर्चा चल रही थी, तभी पाथर्डी से कुछ लोग वहाँ आए तथा बाबा ने उनसे कुछ लोगों के सम्बन्ध में पूछताछ भी की।

(२) श्रीमती काशीबाई कानेटकर (पूना की एक प्रसिद्ध विदुषी महिला) ने साईलीला-पत्रिका, भाग २ (सन् १९३४) के पृष्ठ ७९ पर अनुभव नं. ५ में प्रकाशित किया है कि बाबा के चमत्कारों को सुनकर हम लोग अपनी ब्रह्मवादी संस्था की पद्धति के अनुसार विवेचन कर रहे थे। विवाद का विषय था कि श्री साईबाबा ब्रह्मवादी हैं या वाममार्गी । कालान्तर में जब मैं शिरडी को गई तो मुझे इस सम्बन्ध में अनेक विचार आ रहे थे। जैसे ही मैंने मस्जिद की सीढ़ियों पर पैर रखा कि बाबा उठ कर सामने आ गए और अपने हृदय की ओर संकेत कर, मेरी ओर घूरते हुये क्रोधित हो बोले -''**यह ब्राह्मण है, शुद्ध ब्राह्मण ।** इसे वाम मार्ग से क्या प्रयोजन? यहाँ कोई भी यवन प्रवेश करने का दुस्साहस नहीं कर सकता और न ही वह करे। '' पुनः अपने हृदय की ओर इंगित करते हुए बोले,''**यह ब्राह्मण लाखों मनुष्यों का पथप्रदर्शन कर सकता है और उनको अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति करा सकता है। यह ब्राह्मण की मस्जिद है। मैं यहाँ किसी वाममार्गी की छाया भी न पड़ने दूँगा।**

बाबा की प्रकृति

मैं मूर्ख जो हूँ, श्री साईबाबा की अद्भुत लीलाओं का वर्णन नहीं कर सकता। शिरडी के प्रायः समस्त मंदिरों का उन्होंने जीर्णोद्धार किया। श्री तात्या पाटील के द्वारा शनि, गणपति, शंकर, पार्वती, ग्राम्यदेवता और हनुमानजी आदि के मंदिर ठीक करवाये। उनका दान भी विलक्षण था। दक्षिणा के रुप में जो धन एकत्रित होता था, उसमें से वे किसी को बीस रुपये, किसी को पंद्रह रुपये या किसी को पचास रुपये, इसी प्रकार प्रतिदिन स्वच्छन्दतापूर्वक वितरण कर देते थे। प्राप्तिकर्त्ता उसे शुद्ध दान समझता था। बाबा की भी सदैव यही इच्छा थी कि उसका उपयुक्त रीति से व्यय किया जाय। बाबा के दर्शन से भक्तों को अनेक प्रकार का लाभ पहुँचता था। अनेकों निष्कपट और स्वस्थ बन गए; दुष्टात्मा पुण्यात्मा में परिणत हो गये; अनेकों कुष्ठ रोग से मुक्त हो गए और अनेकों को मनोवांछित फल की प्राप्ति हो गई। बिना कोई रस या औषधि सेवन किए, बहुत से अंधों को पुनः दृष्टिं प्राप्त हो गई, पंगुओं की पंगुता नष्ट हो गई। कोई भी उनकी महानता का अन्त न पा सका। उनकी कीर्त्ति दूर दूर तक फैलती गई और भिन्न-भिन्न स्थानों से यात्रियों के झुंड के झुंड शिरडी आने लगे। बाबा सदा धूनी के पास ही आसन जमाए रहते और वहीं विश्राम किया करते थे। वे कभी स्न्नान करते और कभी स्नान किए बिना ही समाधि में लीन रहते थे। वे सिर पर एक छोटी सी साफी, कमर में एक धोती और तन ढँकने के लिए एक अंगरखा धारण करते थे। प्रारम्भ से ही उनकी वेशभूषा इसी प्रकार थी। अपने जीवनकाल के पूर्वार्द्ध में वे गाँव में चिकित्साकार्य भी किया करते थे। रोगियों का निदान कर उन्हें औषधि भी देते थे और उनके हाथ में अपरिमित यश था। इस कारण से वे अल्प काल में ही योग्य चिकित्सक विख्यात हो गए। यहाँ केवल एक ही घटना का उल्लेख किया जाता है, जो बड़ी विचित्र सी है।

विलक्षण नेत्र चिकित्सा

एक भक्त की आँखें बहुत लाल हो गई थीं। उन पर सूजन भी आ गई थी। शिरडी सरीखे छोटे ग्राम डाक्टर कहाँ? तब भक्तगण ने रोगी को बाबा के समक्ष उपस्थित किया। इस प्रकार की पीडा में डॉक्टर प्रायः लेप, मरहम, अंजन, गाय का दूध तथा कपूरयुक्त औषधियों को प्रयोग में लाते हैं। पर बाबा की औषधि तो सर्वथा ही भिन्न थी। उन्होंने भिलावाँ पीस कर उसकी दो गोलियाँ बनायीं और रोगी के नेत्रों में एक-एक गोली चिपका कर कपड़े की पट्टी से आँखें बाँध दीं। दूसरे दिन पट्टी हटाकर नेत्रों के ऊपर जल के छींटे छोड़ गये। सूजन कम हो गई और नेत्र प्रायः नीरोग हो गए। नेत्र शरीर का एक अति सुकोमल अंग है, परन्तु बाबा की औषधि से कोई हानि नहीं पहुँची, वरन्

नेत्रों की व्याधि दूर हो गई। इस प्रकार अनेक रोगी नीरोग हो गए। यह घटना तो केवल उदाहरणस्वरुप ही यहाँ लिखी गई है।

बाबा की यौगिक क्रियाएँ

बाबा को समस्त यौगिक प्रयोग और क्रियाएँ ज्ञात थीं। उनमें से केवल दो का ही उल्लेख यहाँ किया जाता है:-

(१) **धौति क्रिया** (आँतें स्वच्छ करने की क्रिया) प्रति तीसरे दिन बाबा मस्जिद से पर्याप्त दूरी पर, एक वट वृक्ष के नीचे किया करते थे। एक अवसर पर लोगों ने देखा कि उन्होंने अपनी आँतों को उदर के बाहर निकालकर उन्हें चारों ओर से स्वच्छ किया और समीप के वृक्ष पर सूखने के लिये रख दिया। शिरडी में इस घटना की पुष्टि करने वाले लोग अभी भी जीवित हैं। उन्होंने इस सत्य की परीक्षा भी की थी।

साधारण धौति क्रिया एक ३'' चौड़े व २२ १/२ फुट लम्बे गीले कपड़े के टुकड़े से की जाती है। इस कपड़े को मुँह के द्वारा उदर में उतार लिया जाता है तथा उसे लगभग आधा घंटे तक रखे रहते हैं, ताकि उसका पूरा-पूरा प्रभाव हो जावे । तत्पश्चात उसे बाहर निकाल लेते है.। पर बाबा की तो यह धौति क्रिया सर्वथा विचित्र और असाधारण ही थी।

(२) **खण्डयोग** - एक समय बाबा ने अपने शरीर के अवयव पृथक्-पृथक कर मस्जिद के भिन्न-भिन्न स्थानों में बिखेर दिए। अकस्मात् उसी दिन एक महाशय मस्जिद में पधारे और अंगों को इस प्रकार यहाँ-वहाँ बिखरा देखकर बहुत ही भयभीत हुए। पहले उनकी इच्छा हुई कि लौटकर ग्राम अधिकारी के पास यह सूचना भिजवा देनी चाहिए कि किसी ने बाबा का खून कर उनके टुकड़े- टुकड़े कर दिए हैं। परन्तु सूचना देने वाला ही पहले पकड़ा जाता है, यह सोचकर वे मौन रहे। दूसरे दिन जब वे मस्जिद में गये तो बाबा को पूर्ववत हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ देखकर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। उन्हें ऐसा लगा कि पिछले दिन जो दृश्य देखा था, वह कहीं स्वप्न तो नहीं था?

बाबा बाल्याकाल से ही यौगिक क्रियाएं किया करते थे और उन्हें जो अवस्था प्राप्त हो चुकी थी, उसका सत्य ज्ञान किसी को भी नहीं था। चिकित्सा के नाम से उन्होंने कभी किसी से एक पैसा भी स्वीकार नहीं किया। अपने उत्तम लोकप्रिय गुणों के कारण उनकी कीर्त्ति दूर-दूर तक फैल गई। उन्होंने अनेक निर्धनों और रोगियों को स्वास्थ्य प्रदान किया। इस प्रसिद्ध डॉक्टरों के डॉक्टर (मसीहों के मसीहा) ने कभी अपने स्वार्थ की चिन्ता न कर अनेक विन्घों का सामना किया तथा स्वयं असहनीय वेदना और कष्ट सहन कर सदैव दूसरों की भलाई की और उन्हें विपत्तियों में सहायता पहुँचाई। वे सदा परकल्याणार्थ चिंतित रहते थे। ऐसी ही एक घटना नीचे लिखी जाती है, जो उनकी सर्वव्यपकता तथा महान् दयालुता की द्योतक है।

बाबा की सर्वव्यापकता और दयालुता

सन् १९१० में बाबा दीवाली के शुभ अवसर पर धूनी के समीप बैठे हुए अग्नि ताप रहे थे तथा साथ ही धूनी में लकड़ी भी डालते जा रहे थे। धूनी प्रचण्डता से प्रज्वलित थी। कुछ समय पश्चात् उन्होंने लकड़ियाँ डालेने के बदले अपना हाथ धूनी में डाल दिया। हाथ बुरी तरह से झुलस गया। नौकर माधव तथा माधवराव देशपांडे ने बाबा को धूनी में हाथ डालते देखकर तुरन्त दौडकर उन्हें बलपूर्वक पीछे खींच लिया।

माधवराव ने बाबा से कहा, ''देवा! आपने ऐसा क्यों किया ?'' बाबा सावधान होकर कहने लगे, ''यहाँ से कुछ दूरी पर एक लुहारिन जब भट्टी धौंक रही थी, उसी समय उसके पति ने उसे बुलाया। कमर से बँधे हुए शिशु का ध्यान छोड़ वह शीघ्रता से वहाँ दौड़कर गई । अभाग्यवश शिशु फिसल कर भट्टी में गिर पड़ा। मैंने तुरन्त भट्टी में हाथ डालकर शिशु के प्राण बचा लिए हैं। मुझे अपना हाथ जल जाने का कोई दुःख नहीं है, परन्तु मुझे हर्ष है कि एक मासूम शिशु के प्राण बच गए।''

कुष्ठ रोगी की सेवा

माधवराव देशपांडे के द्वारा बाबा का हाथ जल जाने का समाचार पाकर श्री नानासाहेब चाँदोरकर, बम्बई के सुप्रसिद्ध डॉक्टर श्री परमानंद के साथ दवाइयाँ, लेप, लिंट तथा पट्टियाँ आदि साथ लेकर शीघ्रता से शिरडी को आए। उन्होंने बाबा से डॉक्टर परमानन्द को हाथ की परीक्षा करने और जले हूए स्थान में दवा लगाने की अनुमति माँगी। यह प्रार्थना अस्वीकृत हो गई। हाथ जल जाने के पश्चात् एक कुष्ठ-पीड़ित भक्त भागोजी शिंदे उनके हाथ पर सदैव पट्टी बाँधते थे। उनका कार्य था प्रतिदिन जले हुए स्थान पर घी मलना और उसके ऊपर एक पत्ता रखकर पट्टियों से उसे पुनः पूर्ववत् कस कर बाँध देना। घाव शीघ्र भर जाए, इसके लिए नानासाहेब चाँदोरकर ने पट्टी छोड़ने तथा डॉ. परमानन्द से जाँच व चिकित्सा कराने का बाबा से बारंबार अनुरोध किया। यहाँ तक कि डॉ. परमानन्द ने भी अनेक बार प्रार्थना की, परन्तु बाबा ने यह कहते हुए टाल दिया कि केवल अल्लाह ही मेरा डॉक्टर है। उन्होंने हाथ की परीक्षा करवाना अस्वीकार कर दिया। डॉ. परमानन्द की दवाइयाँ शिरडी के वायुमंडल में न खुल सकीं और न उनका उपयोग ही हो सका। फिर भी डॉक्टर साहेब का परम भाग्य था, जो उन्हें बाबा के श्रीदर्शन का लाभ हुआ। भागोजी को दवा लगाने की अनुमति मिल गई। कुछ दिनों के उपरांत जब घाव भर गया, तब सब भक्त सुखी हो गए, परन्तु यह किसी को भी ज्ञात न हो सका कि कुछ पीड़ा अवशेष रही थी या नहीं। प्रतिदिन प्रातःकाल वही क्रम-घृत से हाथे की मालिश और पुनः कस कर पट्टी बाँधना-श्रीसाईबाबा की समाधि पर्यन्त यह कार्य इसी प्रकार चलता रहा। श्रीसाईबाबा सदृश पूर्ण सिद्ध को, यथार्थ में इस चिकित्सा की भी कोई आवश्यकता नहीं थी, परन्तु भक्तों के प्रेमवश, उन्होंने भागोजी की यह सेवा (अर्थात उपासना) निर्विघ्न स्वीकर की । जब बाबा लेण्डी को जाते तो भागोजी छाता लेकर उनके साथ ही जाते थे। प्रतिदिन प्रातः काल जब बाबा धूनी के पास आसन पर विराजते, तब भागोजी वहाँ पहले से ही उपस्थित रहकर अपना कार्य प्रारम्भ कर देते थे। भागोजी ने पिछले जन्म में अनेक पाप-कर्म किए थे। इस कारण वे कुष्ठ रोग से पीड़ित थे। उनकी उँगलियाँ गल चुकी थीं और शरीर पीप आदि से भरा हुआ था, जिससे दुर्गन्ध भी आती थी। यद्यपि बाह्य दृष्टि से वे दुर्भागी प्रतीत होते थे, परंतु बाबा का प्रधान सेवक होनके नाते, यथार्थ में वे ही अधिक भाग्यशाली तथा सुखी थे। उन्हें बाबा के सान्निध्य का पूर्ण लाभ प्राप्त हुआ।

बालक खापर्डे को प्लेग

अब मैं बाबा की एक दूसरी अद्‌भुत लीला का वर्णन करुँगा। श्रीमती खापर्डे (अमरावती के श्री दादासाहेब खापर्डे की धर्मपत्नी) अपने छोटे पुत्र के साथ कई दिनों से शिरडी में थीं। पुत्र तीव्र ज्वर से पीड़ित था, पश्चात् उसे प्लेग की गिल्टी (गाँठ) भी निकल आई। श्रीमती खापर्डे भयभीत हो बहुत घबराने लगीं और अमरावती लौट जाने का विचार करने लगीं। संध्या-समय जब बाबा वायुसेवन के लिए वाडे (अब जो ' समाधि मंदिर' कहा जाता है) के पास से जा रहे थे, तब उन्होंने उनसे लौटने की अनुमति माँगी तथा कम्पित स्वर में कहने लगीं कि मेरा प्रिय पुत्र प्लेग से ग्रस्त हो गया है, अतः अब मैं घर लौटना चाहती हूँ। प्रेमपूर्वक उनका समाधान करते हुए बाबा ने कहा, ''आकाश में बहुत बादल छाए हुए हैं। उनके हटते ही आकाश पूर्ववत् स्वच्छ हो जाएगा ।'' ऐसा कहते हुए उन्होंने कमर तक अपनी कफनी ऊपर उठाई और वहाँ उपस्थित सभी लोगों को चार अंडों के बराबर गिल्टियाँ दिखा कर कहा, '' देखो, मुझे अपने भक्तों के लिये कितना कष्ट उठाना पड़ता है। उनके कष्ट मेरे हैं।'' यह विचित्र और असाधारण लीला देखकर लोगों को विश्वास हो गया कि सन्तों को अपने भक्तों के लिए किस प्रकार कष्ट सहन करने पड़ते हैं। संतों का हृदय मोम से भी नरम तथा अन्तर्बाह्य मक्खन जैसा कोमल होता है। वे अकारण ही भक्तों से प्रेम करते और उन्हें अपना निजी सम्बंधी समझते हैं।

पंढरपुर-गमन और निवास

बाबा अपने भक्तों से कितना प्रेम करते और किस प्रकार उनकी समस्त इच्छाओं तथा समाचारों को पहले से ही जान लेते थे, इसका वर्णन कर मैं यह अध्याय समाप्त करुँगा।

नानासाहेब चाँदोरकर बाबा के परम भक्त थे। वे खानदेश में नंदूरबार के मामलतदार थे। उनका पंढरपुर को स्थानांतरण हो गया और श्रीसाईबाबा की भक्ति उन्हें सफल हो गई, क्योंकि उन्हें पंढरपुर जो भूवैकु ण्ठ (पृथ्वी का स्वर्ग) सदृश ही समझा जाता है, उसमें रहने का अवसर प्राप्त हो गया। नानासाहेब को शीघ्र ही कार्यभार संभालना था, इसलिये वे किसी को पूर्व पत्र या सूचना दिए बिना ही शीघ्रता से शिरडी को रवाना हो गए। वे अपने पढरपुर (शिरडी) में अचानक ही पहुँचकर अपने विठोबा (बाबा) को नमस्कार कर फिर आगे प्रस्थान करना चाहते थे। नानासाहेब के आगमन की किसी को भी सूचना न थी। परन्तु बाबा से क्या छिपा था? वे तो सर्वज्ञ थे। जैसे ही

नानासाहेब नीमगाँव पहुँचे (जो शिरडी से कुछ ही दूरी पर है) , बाबा पास बैठे हुए म्हालसापति, अप्पा शिंदे और काशीराम से वार्त्तालाप कर रहे थे। उसी समय मस्जिद में स्तब्धता छा गई और बाबा ने अचानक ही कहा, '' चलो, चारों मिलकर भजन करें। पंढरपुर के द्वार खुले हुए हैं-'' यह भजन प्रेमपूर्वक गाएँ ('' पंढरपुरला जायाचें जायाचें तिथेंच मजला राह्याचें । तिथेच मजला राह्याचें, घर तें माझ्या रायांचे।।) सब मिलकर गाने लगे। (भावार्थ-''मुझे पंढरपुर जाकर वहीं रहना है, क्योंकि वह मेरे स्वामी (ईश्वर) का घर है।'') बाबा गाते जाते और भक्तगण उसे दुहराते जाते थे। कुछ समय में नानासाहेब ने वहाँ सहकुटुम्ब पहुँचकर बाबा को प्रणाम किया। उन्होंने बाबा से पंढरपुर को साथ पधारने तथा वहाँ निवास करने की प्रार्थना की। पाठको ! अब इस प्रार्थना की आवश्यकता ही कहाँ थी? भक्तगण ने नानासाहेब को बतलाया कि बाबा पंढरपुर निवास के भाव में पहले ही से हैं। यह सुनकर नानासाहेब द्रवित हो श्री- चरणों पर गिर पड़े और बाबा की आज्ञा, उदी तथा आशीर्वाद प्राप्त कर वे पंढरपुर को रवाना हो गये।

बाबा की कथाएं अनन्त हैं। अन्य विषय जैसे - मानव जन्म का महत्व, बाबा का भिक्षा-वृत्ति पर निर्वाह, बायजाबाई की सेवा तथा अन्य कथाओं को अगले अध्याय के लिए शेष रखकर अब मुझे यहाँ विश्राम करना चाहिए।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ।।